Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ADITIY 1947 G.K.V.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079468

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPARED

Stock Verification-2024

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ५ अङ्क २ अगस्त १९४७

अदिति

श्रीअरविन्द की विशाल आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि से प्रेरित
त्रैमासिक पत्रिका

079468

अदिति कार्यालय, श्रीअरविन्द आश्रम,
पांडिचेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भगवान् के प्रति निःशेष रूप से तथा अंग अंग में आत्मसमर्पण करते हैं उन्हें ही भगवान् अपने आपको प्रदान करते हैं। उन्हें ही शान्ति, प्रकाश, शक्ति, आत्म-सुख, स्वातन्त्र्य, विशाल-भाव, अत्युच्च ज्ञान तथा अनन्त आनन्द प्राप्त होते हैं।

श्रीअरविन्द

प्रकाशक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर
नयी देहली

मूल्य

एक अङ्क १।)
वर्ष भर के चारों अङ्क ४)

विदेश का चन्दा

एक अङ्क २॥ शिलिंग वार्षिक १० शिलिंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

अदिति

उन्नीसवीं कला

१५ अगस्त १९४७ के दिन, श्रीअरविन्द की ७५ वर्षीय
जयन्ती के उपलक्ष में

अदिति कार्यालय, श्रीअरविन्द आश्रम
पांडिचेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचना

सार्वजनिक पुस्तकालयों को अदिति आधे दाम पर मिल सकती है।

ग्राहकों से—

१. जो ग्राहक दर्शन पर आ रहे हों और यदि वे दर्शन के समय अपनी अदिति की प्रति स्वयं पांडिचेरी में ही प्राप्त करना चाहते हों वे कृपया दर्शन से ४-५ दिन पहले हमें सूचित कर दिया करें। उनकी प्रति तब रोक ली जायगी।

२. अदिति का चन्दा भेजते समय मनीआर्डर के कूपन पर पता साफ-साफ लिखकर जरूर भेजें।

३. पत्रव्यवहार में अपनी ग्राहक-संख्या यथासंभव लिखने की कृपा करें तथा उत्तर के लिये डाक-व्यय (टिकट) भी भेजें।

४. अदिति के अंक हमेशा 'सरटिफिकेट आफ पोस्टिंग' के अधीन भेजे जाते हैं। यदि कोई ग्राहक रजिस्ट्री द्वारा मंगाना चाहें तो वे उचित डाकव्यय भेज दें।

प्रति प्राप्त न होने की दशा में दूसरी प्रति देनी सामान्यतया संभव नहीं होती।

—प्रबंधक 'अदिति'

Le Directeur : Haradhan Bakshi
Printed at Imprimerie de Sri Aurobindo Ashram, Pondichéry.
202—47—600

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

अदिति, अगस्त १९४७

श्रीअरविन्द का चित्र

वंदना (कविता) . . . . श्री सुमित्रानंदन पंत . . ५

श्रीमातृ-ध्वजा ६

मातृवचनामृत–

१. प्रार्थना व ध्यान ७

२. ३ जून की घोषणा ८

३. माताजी का प्रवचन ९

श्रीअरविन्दवाणी–

१. स्वाधीनता तथा जातीयता १०

२. ईशोपनिषद् ११

३. श्रीअरविन्द के पत्र–हृत्पुरुष १३

४. दिव्य रूपान्तर (कविता) १७

प्रकाश की ओर . . . . . श्री नलिनीकांत गुप्त . . १८

१५ अगस्त . . . . . . श्री अम्बालाल पुराणी . . २०

पांडिचेरी के ऋषि . . . . . श्री एन. एन. कौल . . २२

चुने हुए फूल २६

श्रीअरविन्द . . . . . . डा. इन्द्रसेन . . . २७

विजय-ध्वज . . . . . . श्री जानकीप्रसाद . . ३०

पूर्णयोग . . . . . . श्री नारायणप्रसाद . . ३१

सद्गुरो ! . . . . श्री 'सुन्दरम्' . . . ३५

धन्य हो गुरुदेव, धन्य हो ! . . . डा. इन्द्रसेन ३६

श्रीअरविन्द का योग-समन्वय–

यज्ञ, त्रिदल पथ और यज्ञ के अधीश्वर ३७

योग-दीक्षा ४७

कविता-कुंज–

१. श्रीअरविन्द दर्शन . . . . . श्री सुमित्रानंदन पंत . . ५१

२. तुमको– . . . . . . श्री वंशीधर . . . ५४

सम्पादकीय– डा० इन्द्रसेन

१. १५ अगस्त ५५

२. एशियाई सम्मेलन के संस्मरण ५६

श्रीयुत अम्बालालजी पुराणी देहली में श्री अभय ६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

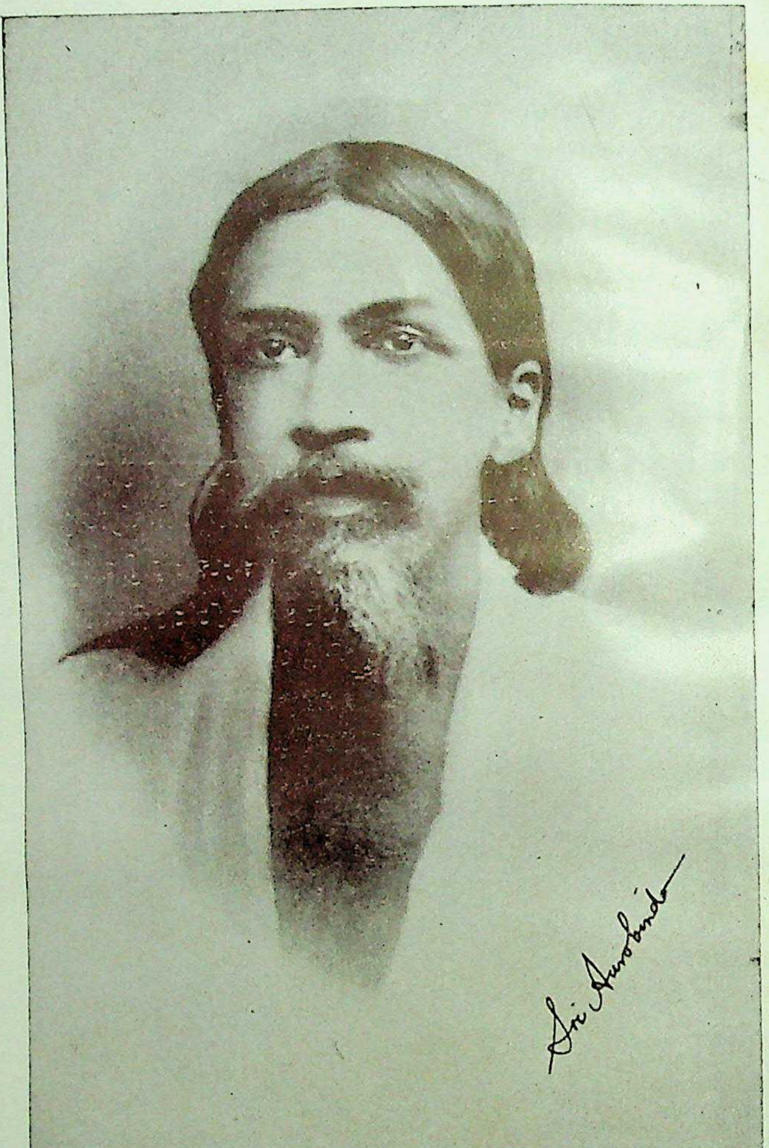

७५ वर्षीय जयन्ती के उपलक्ष में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वंदना

श्रीअरविन्द,
सभक्ति प्रणाम !

अतिमानस के ज्योतित सरसिज,
दिव्य जगत जीवन के वर द्विज,
चिदानन्द के स्वर्णिम मनसिज,
ज्योतिधाम,
सज्ञान प्रणाम !

विश्वात्मा के नव विकास तुम,
परम चेतना के प्रकाश तुम,
ज्ञान भक्ति श्री के विलास तुम,
पूर्ण प्रकाम,
सकर्म प्रणाम !

दिव्य तुम्हारा परम तपोबल
अमृत ज्योति से भर दे भूतल,
सफल मनोरथ सृष्टि हो सकल,
श्रीललाम,
निष्काम प्रणाम !

—सुमित्रानंदन पंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमातृ-ध्वजा

(साथ में रखी हुई ध्वजा के विषय में)

यह एक पूरा खिला हुआ सुनहला कमल है। इसमें (भीतर ४, बाहर १२) पंखुड़ियों की दो पंक्तियां हैं। यह रुपहले नीले वर्गाकार क्षेत्र के ठीक केन्द्र में है। वर्ग की भुजा का कमल के व्यास के साथ अनुपात है ६ : २.५।

यह भारत के आध्यात्मिक ध्येय की ध्वजा है। और इस ध्येय की पूर्त्ति में ही भारत की एकता संपादित होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदिति

अनागसो अदितये स्याम

मातृ-वचनामृत–

प्रार्थना व ध्यान

तूने मुझसे कहा–"विपत्ति का सामना करो। पर तुम अपना ध्यान दूसरी ओर क्यों फेर लेना चाहती हो अथवा कर्म से दूर भागती हो, संघर्ष से बाहर, सत्य के गंभीर चिन्तन में निमग्न रहना चाहती हो। वास्तव में सत्य की सर्वांग अभिव्यक्ति चरितार्थ होनी चाहिये, अन्ध अविद्या और घने विरोध की विघ्न-बाधाओं पर उसकी विजय होनी चाहिये। विपद् का दृढ़ता से सामना करो। वह भगवत्-शक्ति के सम्मुख छिन्न-भिन्न हो जायगी।"

हे प्रभु, इस बाह्यतम प्रकृति की निर्बलता को मैं समझ गयी हूं। यह जड़-सत्ता की अधीनता स्वीकार करने को सदा तैयार रहती है तथा टाल-मटोल की वृत्ति के अधीन हो, बदले में, मन और आत्मा की पूर्ण स्वतन्त्रता चाहती है। पर तू तो हमसे कर्म चाहता है और कर्म ऐसी वृत्ति को सहन नहीं करता। आन्तरिक जगतों पर विजय पाना ही पर्याप्त नहीं है, हमें अत्यन्त जड़ जगतों पर भी विजय पानी है। कठिनाइयों से या विघ्न-बाधाओं से हमें इसलिये नहीं भागना चाहिये क्योंकि हममें एक ऐसी चेतना में आश्रय पाने की शक्ति है जहां कोई विघ्न-बाधा आदि नहीं ...... हमें विपत्ति का डटके सामना करना चाहिये–तेरी सर्व-शक्ति में विश्वास रखके कि वह विजय प्राप्त करेगी।

हे प्रभु, मुझे सर्वांग रूप में एक योद्धा का हृदय दे, तब तेरी विजय निश्चित हो जायगी।

"विजय–चाहे जितने कष्ट आवें" हमारा वर्तमान ध्येय होना चाहिये। पर यह इसलिये नहीं कि हम कर्म और उसके परिणामों में लिप्त हैं, न ही इसलिये कि हमारे लिये कर्म अनिवार्य है, इसलिये भी नहीं कि हममें परिस्थितियों और आकस्मिक घटनाओं से बच सकने की सामर्थ्य नहीं है।

बल्कि इसलिये कि तूने हमें कर्म का आदेश दिया है। इसलिये कि पृथ्वी पर तेरी विजय का समय आ गया है। इसलिये कि तू अब सर्वमुखी विजय चाहता है।

और विश्व के लिये असीम प्रेम रखते हुए .... आओ संघर्ष करें।

५ सितम्बर, १९१४

–श्री माताजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ जून की घोषणा

वाइसराय ने ३ जून, १९४७ को भारतीय राजनीतिक दलों के नेताओं के प्रति जो घोषणा की थी उसे रेडियो पर सुनने के बाद श्री माताजी को जो 'शब्द' स्फुरित हुआ वह निम्न प्रकार है। श्री-अरविन्द ने इसका अनुमोदन किया है।

भारतीय स्वाधीनता को संगठित करने में जो कठिनाइयां हैं उन्हें हल करने के लिये हमारे सामने एक प्रस्ताव रखा गया है। और उसे तीव्र खिन्नता तथा आशंका-पूर्वक स्वीकार किया जा रहा है। परन्तु क्या तुम जानते हो यह प्रस्ताव हमारे सामने रखा ही क्यों गया है ? हमारे आपस के झगड़ों की मूर्खता को हमें जतलाने के लिये।

और क्या तुम जानते हो कि हमें यह स्वीकार क्यों करना पड़ रहा है ? इसलिये कि हम अपने आपको अपने झगड़ों की मूर्खता जतला सकें।

प्रत्यक्ष ही, यह हल नहीं है। यह एक कसौटी है, कठिन परीक्षा है और यदि हम पूरी सचाई के साथ इसमेंसे पार उतरेंगे तो हमें प्रत्यक्ष हो जायगा कि किसी देश को टुकड़ों में बांटकर उसकी एकता तथा महत्ता संपादित नहीं की जा सकती। न ही स्वार्थों को एक दूसरे के विरोध में रखकर उसकी समृद्धि पैदा की जा सकती है, और न ही धार्मिक रूढ़ियों को एक दूसरे के विरोध में रखने से सत्य की भावना को बढ़ाया जा सकता है।

सब कुछ होते हुए भी भारत की आत्मा एक है और जब कि अभी हमें प्रतीक्षा करनी है ताकि हम यह कहने में समर्थ हो सकें कि "एक और अविभाज्य भारत की जय हो" हमारा नारा होना चाहिये–"भारत की आत्मा अमर हो"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माताजी का प्रवचन

(पेरिस में २५ जून १९१२ को आयोजित सभा में दिया गया)

वह सबसे उपयोगी विचार कौनसा है जिसका कि प्रचार किया जाय और वह सबसे उत्तम दृष्टान्त कौनसा है जो कि उपस्थित किया जाय ?

इस प्रश्न पर दो दृष्टिविन्दुओं से विचार किया जा सकता है : एक तो है बहुत व्यापक दृष्टिबिन्दु जिसका संबंध समस्त भूमण्डल के साथ है, और दूसरा है अव्यापक जिसका संबंध हमारी वर्तमान सामाजिक परिस्थिति के साथ है।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, व्यापक दृष्टिविन्दु से, सबसे अधिक उपयोगी विचार जिसका प्रचार करना चाहिये दो प्रकार का है :

१. यह कि मनुष्य के अन्दर पूर्ण वल और वुद्धि और ज्ञान निहित हैं और यह कि यदि वह उन्हें उपलब्ध करना चाहता है तो उसे अन्तर्निरीक्षण तथा एकाग्रता द्वारा अपनी सत्ता की गहराई में उन्हें खोजना होगा;

२. यह कि ये दिव्य गुण, सभी सत्ताओं के केंद्रस्थान में, हृदय में अभिन्नरूप अनुभव होते हैं; उसीसे ही सवकी मूलगत एकता और परस्परसम्वद्धता तथा भ्रातृभाव परिणामस्वरूप सिद्ध होते हैं।

उपस्थित करने योग्य सर्वश्रेष्ठ दृष्टांत होगा अमिश्रित सौम्य-भाव और अचल शान्तिमय प्रसन्न-भाव का दृष्टान्त। ये ही उस व्यक्ति के स्वाभाविक गुण होते हैं जो सबमें विद्यमान एक ईश्वर के इन भावों को समग्रतया जीवन में उतारना जानता है।

हमारी वर्तमान परिस्थिति के दृष्टिकोण से जो विचार मुझे प्रचार करने के लिये सबसे अधिक उपयोगी प्रतीत होता है वह यह है :

सच्चे रूप में प्रगतिशील विकास,–वह विकास जो मनुष्य को उस सुख की ओर ले जा सकता है जो कि उसका जन्मसिद्ध अधिकार है,–किसी बाह्य साधन, किसी भौतिक सुधार या सामाजिक परिवर्तन में अधिष्ठित नहीं है। व्यक्ति की पूर्णता, आन्तरिक और गहरी पूर्णता ही, उसकी वास्तविक उन्नति का स्वरूप है और वही वर्तमान वस्तुस्थिति का पूरी तरह से रूपान्तर कर सकती है तथा दुःख-दैन्य को प्रसादपूर्ण तथा स्थायी सन्तोष में परिणत कर सकती है।

अतएव सर्वश्रेष्ठ दृष्टान्त है उस सर्वप्रथम व्यक्तिगत पूर्णता का जो कि शेष सभी पूर्णताओं के लिये रास्ता बनाती है, अपने अहंकारमय व्यक्तित्व पर प्राप्तव्य पहली विजय का; निःस्वार्थता का।

वर्तमान समय में जब कि सभी लोग अपनी अनगिनत लालसाओं को पूरा करने के साधन के तौर पर धन के पीछे भागते हैं तब जो व्यक्ति धन के प्रति उदासीन रहता है और किसी लाभ की खातिर नहीं वल्कि केवल एक निष्काम आदर्श का अनुसरण करने के लिये कार्य करता है वह निःसंदेह एक ऐसा दृष्टान्त उपस्थित करता है जो सबसे अधिक उपयोगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्दवाणी–

स्वाधीनता तथा जातीयता

राजनीतिक स्वाधीनता स्वाराज्य का एक अंग मात्र है–उसकी दो पीठें हैं, बाह्य स्वाधीनता और आन्तरिक स्वाधीनता। विदेशी शासन से पूर्ण मुक्ति बाह्य स्वाधीनता है, प्रजातन्त्र आन्तरिक स्वाधीनता का चरम विकास है। जितने दिन तक दूसरे का शासन या राज्य रहता है उतने दिन तक किसी जाति को स्वराज्य-प्राप्त स्वाधीन जाति नहीं कहा जाता। जितने दिन तक प्रजातन्त्र नहीं स्थापित हो जाता उतने दिन तक जाति के अन्दर की प्रजा को स्वाधीन मनुष्य नहीं कहा जाता। हम पूर्ण स्वाधीनता चाहते हैं; हमारा राजनीतिक लक्ष्य है विदेशी आदेश और बन्धन से मुक्ति तथा अपने घर में प्रजा का पूर्ण आधिपत्य।

*

दिव्य सत्य के दो महान् शब्द हैं जिन्होंने विनाश की घोर खटर-पटर और तूफान की सांय-सांय में से होकर, अपने आपको हमारे मनों में आग्रहपूर्वक बलात् प्रविष्ट किया है और जो अब आशासित पुनर्निर्माण के प्रमुख शब्द हैं,–स्वतन्त्रता और एकता। परन्तु प्रत्येक बात पहले तो इसपर निर्भर करती है कि उन दोनोंको देखने की हमारी दृष्टि में कितनी सत्यता है, दूसरे, हमारी उस भाव-विशुद्धि पर जिसके साथ कि हम उसे (सत्य को) प्रयोग में लाते हैं, अन्त में और विशेषतया हमारी उपलब्धि, हमारे साक्षात्कार की आन्तरिकता पर।.....कोई भी धोखा देनेवाले यान्त्रिक रूप जो स्वतन्त्रता की शक्ल तो रखते हैं पर उसका सत्य नहीं, हमें सहायता नहीं करेंगे; वह नयी रचना, देखने में चाहे कितनी ही प्रभावशाली हो, केवल एक दूसरा कैदखाना बन जायगी और छुटकारा पाने को एक नये संघर्ष के लिये बाध्य करेगी। मनुष्य के लिये एकमात्र सुरक्षा इस बात में है कि वह अन्दर से बाहर की ओर जीना सीखे, अपनेको पूर्ण बनाने के लिये संस्थाओं और यन्त्र-सामग्री पर निर्भर न रहते हुए, अपितु अपनी अन्दर की बढ़ती हुई पूर्णता का लाभ उठाकर अपने जीवन के अधिक पूर्ण रूप को और ढांचे को बनावे; क्योंकि इस अन्तर्मुखता से ही हम उन ऊंची चीजों के सत्य को देखने में अधिक-से-अधिक अच्छी तरह समर्थ होंगे जिनका कि हम अभीतक केवल जिह्वा द्वारा उच्चारण करते हैं और जिन्हें अपनी केवल बाह्य बौद्धिक रचना में मूर्त्त करते हैं। उनके सत्य को देख ही नहीं सकेंगे किन्तु उस सत्य को सचाई के साथ अपने बहिर्मुख जीवन में भी प्रयुक्त कर सकेंगे।

*

देश ही जातीयता की प्रतिष्ठा-भूमि है, जाति नहीं है, धर्म नहीं है, और कुछ भी नहीं है, एकमात्र देश है। और जितने भी जातीयता के उपकरण हैं वे सब गौण और सहायक हैं, देश ही मुख्य और आवश्यक है। बहुत-सी परस्परविरोधी जातियां एक देश में निवास करती हैं, उनमें कभी भी सद्-भाव, एकता, मैत्री नहीं थी, परन्तु इसमें भय की क्या बात है? जब एक देश है, एक मां है, तब एक दिन एकता आवेगी ही, अनेक जातियों के मिलन से ही एक बलवान् अजेय जाति उत्पन्न होगी ही। धर्ममत एक नहीं है, संप्रदाय-संप्रदाय में चिर-विरोध है, मेल नहीं है, मेल की आशा भी नहीं है, तथापि भय की कोई बात नहीं, एक दिन स्वदेशमूर्त्तिधारिणी मां के प्रबल आकर्षण से, छल, बल, साम, दण्ड और दान से मेल होकर ही रहेगा, साम्प्रदायिक विभिन्नता भ्रातृभाव में डूब जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईशोपनिषद्

(२)

प्रास्ताविक

उपनिषद् की योजना

उपनिषदें, जो कि शिक्षा देने की नहीं किंतु प्रकाश देने की साधन हैं, ऐसे जिज्ञासुओं के लिये रची गयी थीं जिन्हें पहले से ही वैदिक तथा वैदान्तिक ऋषियों के विचारों से सामान्य परिचिति होती थी, तथा जिन्हें उन विचारों के आधारभूत सत्यों की कुछ व्यक्तिगत अनुभूति भी होती थी। इसीलिये इनकी वर्णनशैली में एक विचार से दूसरे विचार पर प्रकटतया संक्रमण करने एवं ध्वनित या गौणभूत अभिप्रायों को विकसित करने के तरीके को छोड़ दिया गया है।

ईशोपनिषद् का प्रत्येक मंत्र कतिपय ऐसे विचारों पर आश्रय रखता है जो कि मूल में अप्रत्यक्षतया निहित हैं पर वे कहीं भी प्रत्यक्ष रूप में वर्णित नहीं किये गये हैं। वह तर्क भी जो कि इसके परिणामों को पुष्ट करता है शब्दों द्वारा केवल ध्वनित किया गया है, प्रकट तौर पर बुद्धिगम्य नहीं कराया गया है। ऐसा माना जाता था कि उपनिषद् का पाठक –उसे श्रोता कहना शायद अधिक ठीक होगा–एक प्रकाश से दूसरे प्रकाश की ओर अग्रसर होगा; अपनी अन्तःस्फुरणाओं को संपुष्ट करेगा, अपनी अनुभूति द्वारा विचारों की सत्यता की परीक्षा करेगा, न कि उन्हें तार्किक बुद्धि के निर्णय पर छोड़ देगा।

पर आधुनिक मन के लिये यह पद्धति अप्रामाणिक है तथा लागू नहीं हो सकती। उसके लिये तो यह आवश्यक है कि उपनिषद् के विचारों को उनके संपूर्ण रूप में उपस्थित किया जाय, ध्वनित अभिप्रायों की तरफ स्पष्टतया ध्यान आकृष्ट किया जाय, एक विचार से दूसरे विचार तक पहुंचानेवाले आवश्यक संक्रमणों को जुटाया जाय और दबे हुए किंतु सदा अन्तर्निहित तर्क को स्पष्ट प्रकट किया जाय।

इस उपनिषद् के केन्द्रीय विचार को अर्थात् आधारभूत विरोधी तत्त्वों के समन्वय और सुसंगति को चार क्रमिक विचारधाराओं में सौष्ठव के साथ साधित किया गया है।

प्रथम विचारधारा

प्रथम धारा में, आधार के तौर पर इस विचार की स्थापना की गयी है कि एकमेव और स्थिर **आत्मा** गति के तथा गति के आकारों के विश्व में बस रहा है और इसपर शासन कर रहा है। (पहले मंत्र का पूर्वार्द्ध)

इस विचार के ऊपर मनुष्य के लिये दिव्य जीवन के एक नियम को प्रतिष्ठित किया गया है जो कि इस प्रकार है–कामना के परिवर्जन द्वारा सब वस्तुओं का त्याग करते हुए उन सबका भोग। (पहले मंत्र का उत्तरार्द्ध)

उसके बाद कर्मों की और भौतिक जीवन की सार्थकता को उद्घोषित किया गया है इस आधार पर कि **ईश** के साथ एकत्वप्राप्त जीव बहुविध गति की समस्त हलचल के बीच भी अविच्छेद्य रूप से मुक्त रहता है। (मन्त्र २)

अन्त में, उस **एकमेव** की बहु में सत्य अभिव्यक्ति के अन्दर अज्ञानयुक्त हस्तक्षेप करने का परिणाम बताया गया है–मरने पर अन्धतमस की अवस्थाओं में निवर्तन। (मन्त्र ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय विचारधारा

दूसरी विचारधारा में प्रथम मन्त्र के विचारों को पुनः प्रतिपादित और परिबृंहित किया गया है।

एकमेव स्थिर **ईश** तथा बहुविध गति, ये दोनों एक ब्रह्म के रूप में एकीभूत हैं। तथापि उस ब्रह्म की एकता और स्थिरता उसके उच्चतर सत्य हैं और वह ब्रह्म सबको अपनेमें समाये हुए है तथा सबमें बसा हुआ है। (मन्त्र ४, ५)

जीवन के नियम का आधार और उसकी चरितार्थता उपलब्ध होती हैं एकता की उस अनुभूति में जिसके द्वारा मनुष्य वैश्व तथा परात्पर **आत्मा** के साथ अपने-आपको तदात्म कर लेता है तथा उस **आत्मा** में उसके सब भूतभावों के साथ तदात्म हो जाता है, पर शोक और मोह से पूर्णतः मुक्त रहते हुए। (मन्त्र ६, ७)

तृतीय विचारधारा

तीसरी धारा में इहजीवन और कर्मों की सार्थकता (दूसरे मन्त्र के विषय) का पुनः वर्णन और इनकी दिव्य कृतार्थता का संकेत किया गया है।

गत्यात्मक विश्व (जगती) में तथा उस एकमेव **सत्ता** के भूतभावों में **ईश** की आत्म-अभिव्यक्ति होने के क्रम बताये गये हैं और सब सत्ताओं का आंतरिक विधान **ईश** के विचार और निर्धारण द्वारा नियत बताया गया है। (मन्त्र ८)

विद्या और अविद्या, संभूति और असंभूति का समन्वय इस प्रकार किया गया है कि ये दोनों वृद्धिशील आत्म-साक्षात्कार के लिये—जो कि मर्त्यता की अवस्था से **अमरता** की अवस्था की ओर बढ़ता जाता है—परस्पर उपयोगी होती हैं। (मन्त्र ९-१४)

चतुर्थ विचारधारा

चौथी विचारधारा लोकों के विचार का पुनः प्रतिपादन करती है और उसमें **सूर्य** तथा **अग्नि** के अलंकार द्वारा **परम सत्य** तथा **अमरता** (मन्त्र १५, १६), इस जीवन के कर्म (मन्त्र १७) और मृत्यु के बाद की अवस्था (मन्त्र १८) इन सबके संबंधों का प्रतीकात्मक रूप में दिग्दर्शन कराया गया है।

'उपनिषद्' शब्द का अर्थ है गूढ़ स्थान में प्रवेश करना। ऋषियों ने तर्क के बल पर, विद्या का प्रसार करके, प्रेरणा के स्रोत में प्रवाहित होकर उपनिषदुक्त ज्ञान को नहीं प्राप्त किया था, बल्कि मन की जिस निभृत कोठरी के गुप्त स्थान में सम्यक् ज्ञान की चाभी लटक रही है, योग के द्वारा अधिकारी होकर, उसी कोठरी में प्रवेश कर उन्होंने उस चाभी को प्राप्त किया था तथा वे अभ्रान्त ज्ञान के विशाल राज्य के राजा हुए थे। वह चाभी हस्तगत हुए बिना उपनिषदों का यथार्थ अर्थ नहीं खुलता। केवल तर्क के बल पर उपनिषदों का अर्थ करना और घने जंगल में ऊंचे ऊंचे वृक्षों की जड़ को मोमबत्ती के प्रकाश में निरीक्षण करना एक ही बात है। साक्षात् दर्शन ही वह सूर्यालोक है जिसके द्वारा सारा अरण्य आलोकित होता है और अन्वेषणकारी की दृष्टि के सामने प्रकट हो जाता है। साक्षात् दर्शन योग के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

—श्रीअरविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द के पत्र–

हृत्पुरुष

(१)

पारिभाषिक[1] तौर पर, हृत्पुरुष हमारी सत्ता का वह भाग नहीं है जिसका कि अतिमानसिक स्तर के साथ साक्षात् संबंध है,–यद्यपि, जब एक बार अतिमानस के साथ इसका संबंध स्थापित हो जाता है तो यह उसे अत्यंत सजगता से प्रत्युत्तर देता है। हमारा चैत्य भाग वह तत्त्व है जो सीधा भगवान् से निर्गत होता है और भगवान् के साथ सम्बद्ध रहता है। अपने उद्‌गम की दृष्टि से यह दिव्य संभाव्यताओं से परिपूर्ण केंद्रबिंदु है जो कि मन, प्राण और शरीर की निम्नतर त्रिविध अभिव्यक्ति को आश्रय देता है। यह दिव्य तत्त्व सभी सजीव प्राणियों में विद्यमान है किंतु यह साधारण चेतना के पीछे छिपा रहता है, प्रारंभ में अविकसित होता है और, जब विकसित भी होता है, तब भी सदा या बहुधा सामने नहीं होता; करणों की अपूर्णता इसे जहांतक इजाजत देती है वहांतक यह उनके जरिये और उनकी सीमाओं के अधीन अपने आपको व्यक्त करता है। यह ईश्वराभिमुख अनुभव के द्वारा चेतना में बढ़ता है, हर बार जब-जब भी हममें उच्चतर गति होती है तब-तब शक्ति को प्राप्त करता जाता है, और, अंत में, इन गभीरतर और उच्चतर गतियों के संचय से चैत्य व्यक्तित्व,–वह जिसे कि हम प्रायः हृत्पुरुष पुकारते हैं–विकसित हो जाता है। सदा यह चैत्य पुरुष ही मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ने का वास्तविक, यद्यपि बहुधा गुप्त कारण और इसमें उसका सबसे बड़ा सहायक होता है। इसलिये इसे ही हमने योग में पीछे से सामने की तरफ लाना है।

जैसे 'साइकिक (Psychic)' शब्द वैसे ही 'सोल (Soul)' शब्द भी अंग्रेजी भाषा में बहुत अस्पष्ट रूप में और अनेक विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। साधारण बोलचाल में अनेक बार मन और आत्मा के बीच कोई स्पष्ट भेद नहीं

---

[1]किसीने पूछा था कि हृत्पुरुष क्या है, क्या इसकी इस प्रकार परिभाषा की जा सकती है कि यह सत्ता का वह भाग है जो अतिमानस के साथ सदा सीधा संबंध रखता है। मैं उत्तर देता हूं कि इसकी ऐसी परिभाषा नहीं की जा सकती। क्योंकि प्राणियों के किंवा अधिकांश मनुष्यों के चैत्य पुरुष का अतिमानस के साथ सीधा संबंध नहीं है–इसलिये पारिभाषिक तौर पर इसका वर्णन इस प्रकार नहीं किया जा सकता।

किंतु जब एक बार अतिमानसिक और मानवीय चेतना के बीच संबंध कायम हो जाता है, तो यह चैत्य पुरुष ही उसे अत्यंत सजगता के साथ प्रत्युत्तर देता है–मन, प्राण या शरीर से अधिक सजगतापूर्वक। साथ में यह भी कहा जा सकता है कि यह प्रत्युत्तर शुद्धतर भी होता है; मन, प्राण और शरीर अतिमानसिक प्रभाव की प्राप्ति के साथ अन्य चीजों को भी मिलने दे सकते हैं तथा इस प्रकार उसके सत्य को विकृत हो जाने दे सकते हैं। चैत्य सत्ता अपने प्रत्युत्तर में शुद्ध होती है और ऐसा कोई भी मिश्रण नहीं होने देती।

अतिमानसिक परिवर्तन केवल तभी हो सकता है जब कि चैत्य जाग्रत् हो और उसे, अवरोहण-करती-हुई अतिमानसिक शक्ति का, मुख्य आधार बना दिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता और प्रायः इससे अधिक गम्भीर भ्रांति भी देखने में आती है, क्योंकि आत्मा और हृत्पुरुष शब्दों से कामनात्मक प्राणिक सत्ता–मिथ्या आत्मा या वासनात्मा प्रतिपादित की जाती है न कि सच्चा आत्मस्फुलिंग, हृत्पुरुष। हृत्पुरुष मन या प्राण से बिलकुल भिन्न है; यह उनके पीछे, हृदय में जहां वे मिलते हैं वहां, स्थित है; इसका केंद्रीय स्थान वहीं है, परंतु, अधिक सही रूप में, हृदय के पीछे न कि हृदय में; क्योंकि जिसे मनुष्य साधारणतया हृदय कहते हैं वह भाव का स्थान है, और मानवीय भाव मनोमय-प्राणिक आवेग होते हैं, वे सामान्य तौर पर स्वरूपतः चैत्य नहीं होते। यह पीछे विद्यमान प्रायः करके गुप्त शक्ति, जो मन और प्राणशक्ति से इतर है, हमारे अंदर सच्ची आत्मा है, चैत्य पुरुष है। तो भी चैत्य पुरुष की शक्ति मन, प्राण और शरीर पर प्रभाव डाल सकती है, विचार और बोध और भाव (जो कि तब चैत्य अनुभव बन जाता है) तथा संवेदन और कर्म तथा हमारे अंदर की और सब चीजों को पवित्र बना सकती तथा उन्हें दिव्य गतियों के रूप में तैयार कर सकती है।

भारतीय भाषा में 'Psychic being' या चैत्य पुरुष का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि यह हृदय में स्थित पुरुष या चैत्य[१] पुरुष है; परंतु यहां हृदय शब्द से आंतरिक या गुह्य हृदय समझना चाहिये, हृदये गुहायाम्, न कि बाह्य प्राणिक-भावमय केंद्र। यह सच्ची चैत्य सत्ता (प्राणमय वासनात्मक मन से विभिन्न)–चैत्य (Psyche)–है जिसका 'आर्य (Arya)' के उस पृष्ठ में जिक्र किया गया है जिसका तुम हवाला दे रहे हो।

(२)

जीवात्मा, स्फुलिंगात्मा और चैत्य पुरुष एक ही सद्वस्तु के तीन भिन्न-भिन्न रूप हैं और इन्हें एक साथ मिला-जुला नहीं देना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से आंतरिक अनुभव की विशदता धूमिल हो जाती है।

जीवात्मा या स्पिरिट (Spirit), जैसा कि अंग्रेजी में इसे प्रायः कहा जाता है, अभिव्यक्त या यंत्रात्मक सत्ता के ऊपर स्वतः-सत् है–यह जन्म और मरण से ऊपर, सदा एकरस, व्यक्तिगत आत्मा (individual self) या आत्मन् है। यह व्यक्ति की सनातन सत्य सत्ता है।

स्फुलिंगात्मा (Soul) भगवान् का ज्योतिः-स्फुलिंग है जो व्यक्त सत्ता के ऊपर विराजमान नहीं, परंतु जड़ जगत् में इस (व्यक्त सत्ता) के विकास को अवलंबन देने के लिये अभिव्यक्ति में उतरता है। यह पहले-पहल दिव्य चेतना की प्रभेदशून्य शक्ति होती है जिसमें वे सब सम्भाव्यताएं निहित होती हैं जिन्होंने कि अभीतक आकार धारण नहीं किया है, पर जिनको आकार देना विकास-शक्ति का व्यापार है। यह स्फुलिंग निम्नतम

---

[१] चित्त और चैत्य भाग किञ्चिन्मात्र भी समान नहीं हैं। चित्त उस बिलकुल भिन्न श्रेणी का तत्त्व है जिसमें कि हमारी बाह्य चेतना के मुख्य व्यापार सह-व्यवस्थित किये जाते और अपने अपने स्थान में रखे जाते हैं, और चित्त को जानने के लिये हमें अपने उपरितल या बाह्य प्रकृति के मूल में जाने की जरूरत नहीं। यहां श्रेणी का अर्थ है मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की एक दूसरी श्रेणी, तत्त्वविभाग। चैत्य एक श्रेणी से संबंध रखता है–विज्ञान, मन, प्राण, चैत्य, शरीर–और आंतर तथा बाह्य प्रकृति दोनों को समाविष्ट करता है। चित्त बिलकुल दूसरी श्रेणी या विभाग से संबंध रखता है–बुद्धि, मन, चित्त, प्राण इत्यादि–जो कि साधारण भारतीय मनोविज्ञान में किया गया वर्गीकरण है; यह केवल बाह्य सत्ता के मनोविज्ञान को समाविष्ट करता है। इस विभाग में केवल हमारी बाह्य चेतना के मुख्य व्यापारों को ही भारतीय विचारकों ने संव्यवस्थित और यथास्थान संनिविष्ट किया है; चित्त बाह्य चेतना के इन मुख्य व्यापारों में से एक है और, अतएव, इसे जानने के लिये हमें बाह्य प्रकृति के मूल में जाने की जरूरत नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से लेकर उच्चतम तक सभी जीवित प्राणियों में विद्यमान है।

स्फुलिंगात्मा से ही, विकास-प्रक्रिया में, चैत्य पुरुष बनता है। यह मन, प्राण, शरीर को धारण करता है, उनके अनुभवों से बढ़ता है, प्रकृति (स्व-भाव) को एक जीवन से दूसरेमें ले जाता है। यह चैत्य पुरुष (या Psychic) है। पहले-पहल यह मन, प्राण और शरीर से आवृत होता है, किंतु, ज्यों ही यह बढ़ता है, यह सामने आने और मन, प्राण और शरीर पर प्रभुत्व करने में समर्थ हो जाता है; साधारण मनुष्य में यह अभिव्यक्ति के लिये उन (मन आदि) पर ही निर्भर करता है और उन्हें ऊंचा उठा ले जाने तथा उनका स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग करने में समर्थ नहीं होता। प्राणी का जीवन तब पाशविक या मानवीय होता है, दिव्य नहीं। जब चैत्य पुरुष साधना द्वारा प्रभुत्वशाली बन जाता है और अपने करणों का स्वतंत्रतया उपयोग कर पाता है, तब भगवन्मुखी संवेग पूर्ण हो जाता और मन, प्राण व शरीर की केवल मुक्ति ही नहीं बल्कि उनका रूपांतर संभव हो जाता है।

आत्मा (Self) के स्वतंत्र और जन्म व मरण से ऊपर होने के कारण, जीवात्मा का और उसकी परम या विराट् आत्मा के साथ एकता का अनुभव मुक्ति के अनुभव को उत्पन्न करता है, यही चीज परम आध्यात्मिक मुक्ति के लिये आवश्यक है: किंतु जीवन और प्रकृति के रूपांतर के लिये चैत्य पुरुष का जागरण और उसका प्रकृति पर शासन अपरिहार्य है।

चैत्य पुरुष सच्ची सत्ता, जीवात्मा के साथ अपनी एकता का साक्षात्कार करता है परंतु यह उसमें परिवर्तित नहीं हो जाता।

ऊपर देखा हुआ 'बिंदु' जीवात्मा को, भगवान् के अंश को, देखने का प्रतीकात्मक ढंग हो सकता है; वहांपर अभीप्सा स्वभावतः उच्चतर चेतना के उद्घाटन के लिये होगी जिससे कि सत्ता वहां निवास करे और अविद्या में नहीं। जीवात्मा वास्तव में भगवान् के साथ पहले से ही एक है परंतु जो कुछ आवश्यक है वह यह कि शेष चेतना भी इसे अनुभव करे।

चैत्य पुरुष की अभीप्सा है सम्पूर्ण निम्नतर प्रकृति—मन, प्राण, शरीर के भगवान् की ओर खुलने के लिये, भगवान् के साथ प्रेम और मिलन के लिये, हृदय के अंदर उसकी उपस्थिति और शक्ति के लिये; इस यंत्ररूप सत्ता और प्रकृति के भीतर उच्चतर चेतना के अवतरण द्वारा मन, प्राण और शरीर के रूपांतर के लिये।

दोनों अभीप्साएं इस योग की पूर्णता के लिये तात्त्विक और अपरिहार्य हैं। जब हृत्पुरुष अपनी अभीप्सा को मन, प्राण और शरीर पर बलपूर्वक लागू करता है, तब वे भी अभीप्सा करते हैं और यही चीज निम्नतर सत्ता के स्तर से उठनेवाली अभीप्सा के रूप में तुम्हें अनुभूत हुई। ऊपर अनुभव की गयी अभीप्सा जीवात्मा की यह अभीप्सा है कि उच्चतर चेतना उस एकमेव के साक्षात्कार सहित सत्ता में अभिव्यक्त हो। इसलिये दोनों अभीप्साएं एक दूसरेकी सहायता करती हैं। निम्नतर सत्ता की जिज्ञासा पहले-पहल अनिवार्य तौर पर व्यवधानयुक्त और साधारण चेतनासे अभिभूत होती है। इसे, साधना द्वारा, स्पष्ट, सतत, प्रबल और स्थायी बनना होता है।

शांति, पवित्रता और स्थिरता का अनुभव उच्चतर चेतना के साथ निम्नतर चेतना के मिलन से पैदा होता है। यह बहुधा या तो सविच्छेद होता है या फिर, ऊपरी तल के तूफानों और विक्षोभों से प्रायः आच्छादित हुआ हुआ, गभीरतर चेतना में रहता है। पहले-पहल यह कदाचित् ही स्थायी होता है, परंतु यह स्थायी बन सकता है जब कि स्थिरता और शांति उत्तरोत्तर बार-बार तथा अधिकाधिक समय के लिये आने लगती हैं, तथा अंत में जब कि उच्चतर चेतना की शाश्वत शांति और स्थिरता और निश्चलनीरवता निम्नतर प्रकृति में पूर्ण रूप से अवतरित हो जाती हैं।

(३)

स्फुलिंगात्मा, जब कि वह अपने तात्त्विक रूप में होती है, और चैत्य पुरुष के बीच विभेद दर्शाने की जरूरत है। एक-एकके और सबके अन्तस्तल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुलिंगात्मा विद्यमान है जो कि भगवान् की चिनगारी है—उसके बगैर कोई भी जीवित न रह सकता। किंतु प्राणमय और भौतिक सत्ता को, उसके पीछे किसी स्पष्टतया विकसित चैत्य सत्ता के बगैर, धारण करना सर्वथा संभव है। तथापि, कोई ये व्यापक स्थापनाए नहीं कर सकता कि किसी भी आदिम प्राणी में आत्मा (स्फुलिंग) नहीं होती या यह कि कहीं भी आत्मा दिखायी नहीं पड़ती।

आंतर सत्ता आंतर मन, आंतर प्राण, आंतर शरीर से गठित है—परंतु वह चैत्य सत्ता नहीं है। चैत्य पुरुष आंतरतम सत्ता है और इनसे बिलकुल विलक्षण है। निःसंदेह 'Psychic' (चैत्य) शब्द अंग्रेजी में किसी भी ऐसी चीज को द्योतित करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है जो बाहरी मन, प्राण और शरीर से इतर या गभीरतर है, (कोई भी चीज) जो कि गुह्य या अतिभौतिक है, परंतु वह एक ऐसा प्रयोग है जो गड़बड़ और गलती पैदा करता है और जब हम योग के विषय में बोलते या लिखते हैं तो हम ऐसे प्रयोग को पूर्णतया त्याग देते हैं। साधारण बोलचाल में हम कभी-कभी चैत्य (Psychic) शब्द को अधिक शिथिल लोकप्रचलित अर्थ में प्रयोग कर सकते हैं या कविता में, जो कि बौद्धिक सूक्ष्मता से बद्ध नहीं होती, हम स्फुलिंग (Soul) का कभी-कभी साधारण और अधिक बाह्य अर्थ में या सच्चे चैत्य (Psyche) के अर्थ में प्रयोग कर सकते हैं।

चैत्य पुरुष उपरितल की गतियों से आवृत रहता है और अपने आपको इन बाह्य करणों के द्वारा, जो कि चैत्य के आंतरिक प्रभावों की अपेक्षा बाह्य शक्तियों से ही अधिकतर शासित होते हैं, यथासंभव उत्तम रीति से प्रकट करता है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि वे स्फुलिंगात्मा से सर्वथा जुदा हुए हुए हैं। स्फुलिंगात्मा शरीर में उसी तरह से है जिस तरह कि मन या प्राण—किंतु जिस शरीर को यह अधिकृत करती है वह केवल यही स्थूल भौतिक ढांचा नहीं है, किंतु सूक्ष्म शरीर भी। जब स्थूल कोश छूट जाता है, तब भी शरीर के प्राणमय और मनोमय कोश आत्मा के आधार के तौर पर रहते हैं और अंत में ये भी लय हो जाते हैं।

वनस्पति या पशु की स्फुलिंगात्मा नितांत प्रसुप्त नहीं होती—केवल इसकी अभिव्यक्ति के साधन मानव प्राणी के साधनों की अपेक्षा कम विकसित होते हैं। वनस्पति में ऐसा बहुत कुछ है जो चैत्य है, पशुओं में भी बहुत कुछ है जो चैत्य है। वनस्पति के अपने रूप में केवल प्राणमय शरीर ही विकसित हुआ होता है, इसलिये वह अपनेको प्रकट नहीं कर सकती—पशु में प्राणमय मन होता है और वह अपनेको प्रकट कर सकता है, परंतु उसकी चेतना सीमित है और उसके अनुभव सीमित हैं, अतएव चैत्य तत्त्व कम विकसित चेतना और अनुभव रखता है उसकी अपेक्षा जितना कि मनुष्य में विद्यमान या कम-से-कम संभव है। तथापि, पशुओं में स्फुलिंगात्मा होती है और वे मनुष्यस्थ चैत्य को बहुत सजगता से प्रत्युत्तर दे सकते हैं।

निःसंदेह, भूतप्रेत स्फुलिंगात्मा नहीं होता। यह या तो मनुष्य होता है जो अपने प्राणिक शरीर के रूप में प्रकट होता है या यह उसके प्राण का अंश होता है जो किसी प्राणमय शक्ति या सत्ता से पकड़ लिया जाता है। हमारा प्राणमय भाग, सामान्यतया, शरीर नष्ट होने के बाद भी कुछ समय तक रहता है और प्राणमय लोक में चला जाता है जहां कि यह तबतक रहता है जबतक कि प्राणमय कोश भी नष्ट नहीं हो जाता। उसके बाद यह मनोमय कोश में किसी मनोमय लोक को चला जाता है अगर यह मानसिक तौर पर विकसित हो; और अंत में चैत्य अपने मनोमय कोश को भी छोड़ देता है और अपने विश्राम-धाम को चला जाता है। अगर हमारा मनोमय भाग दृढ़तया विकसित हुआ हो तो वह भी बचा रह सकता है; इसी प्रकार प्राणमय भाग भी, बशर्त्ते कि वे सच्ची चैत्य सत्ता से संगठित किये हुए और उसीके इर्दगिर्द केंद्रित हों—क्योंकि तब वे चैत्य की अमरता में भाग लेते हैं। अन्यथा चैत्य मन और प्राण को अपनेमें समेट लेता है और दो जन्मों के बीच की निस्तब्ध अवस्था में प्रवेश करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य रूपान्तर

शान्त भाव से सम गति से है अब चलता यह मेरा प्राण
दिव्य शक्ति से भर देता है अखिल इन्द्रियों को अनजान।
मस्त हुआ मैं परमेश्वर की दिव्य सुरा का करके पान
मेरा काल बना नाटक सा अथवा सुन्दर स्वप्न समान।
मेरा नाड़ी चक्र बना अब परिवर्तित चिर आलोकित
साधन शाश्वत शान्ति हर्ष का, ईश कृपा से आनन्दित॥

२

मुक्त हुआ मैं, देह दासता तथा प्रकृति बन्धन से मुक्त,
मैं न फंसूंगा क्षुद्र जाल में कभी इन्द्रियों के, निर्मुक्त।
बन्धन मुक्त हुई मम आत्मा अब असीम में मिलती है,
मेरी देह देव का सुखकर साधन बनकर रहती है।
मेरा जीवन देव दया से दिव्य ज्योति का शुभ भंडार
अमर तेज का पुञ्ज बना यह अति विशाल अब सूर्याकार॥ *

---

*यह श्रीअरविन्द की 'Transformation' कविता का अनुवाद है। अनुवादक हैं पं. धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति, संपादक 'सार्वदेशिक', देहली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश की ओर

३

इच्छा और प्रायश्चित्त

जहां कहीं तुम विशुद्ध प्रकाश की किरण, सच्चे सौंदर्य की चमक, वास्तविक सत्य के अणु से भेंट करो—उसके साथ उसके आदिस्रोत की ओर लौट जाओ। अंत तक पदचिह्न का, मार्ग का अनुसरण करो। तुम अपने-आपको भगवान् के आलिंगन में पाओगे।

*

अपनी इंद्रियों को बंद मत करो—कैसी ही पार्थिव वे क्यों न हों। उन सबको संपूर्णतः खोल डालो—खोलो, सदैव और सब जगह, किंतु भगवान् की ओर ही।

*

जीवन स्वयं कला—कला का ठीक उच्चतम रूप—बन जाता है जब कि वह परम सौंदर्य की स्वर-लहरी में ढाल दिया जाता है, जब उसके पद दिव्यता के अवरोही आलापों का अनुसरण करते हैं।

*

पृथिवी की वस्तुओं की ओर हृदय जितना कोमल बनेगा, स्वर्ग की वस्तुओं की ओर वह उतना ही कठोर होता जायगा।

*

तुम जिन असंख्य इच्छाओं को हृदय में पोसते हो, उनमेंसे बहुत तो पूरी ही नहीं होतीं। और जो पूरी होती हैं वे भी किसी अंश में ही।

इच्छाओं को अंदर आश्रय न देने से विशेष हानि नहीं होती। अधिकांश में हानि इच्छा के भोग-सुख की नहीं होती बल्कि आशा के भ्रामक सुख की।

निष्कामता उच्चतम परितृप्ति प्रदान करती है—इच्छाओं की नहीं बल्कि तुममें जो दिव्य संकल्प-शक्ति है उसकी प्रेरणाओं की, जिसे वास्तव में तुम्हारी इच्छाएं अस्वीकृत कर देती हैं।

इच्छा नष्ट होकर स्वर्गीय आनंद की प्राप्ति का मार्ग खोल देती है।

*

ढलाव की ओर जाने में अधिक विशेषता नहीं है; वैसा सब कर सकते हैं—कारण, चेतना का प्राकृतिक खिचाव नीचे की ओर है।

वीर वह है जो एक क्षण के लिये भी, बाल-भर भी फिसलने के लालच के विरुद्ध संघर्ष करता है।

*

कोई बुरा काम करने का प्रायश्चित्त केवल यही है कि अगली बार उसे ठीक किया जाय।

*

तपस्या : अपने-आपको कभी भी नीचे न फिसलने देना, अपनी प्रगति को सदैव ढलाव के ऊपर की ओर कायम रखना।

*

कभी मत कहो "मैं नहीं कर सकता"। ज्यादह बारीकी से देखो, तुम्हें पता लगेगा कि यथार्थ में इसका अर्थ है, "मैं नहीं करना चाहता"।

*

प्रत्येक कठिनाई नये विकास के लिये अवसर हो सकती है। वास्तव में कठिनाई से अभिप्राय क्या है? प्रकृति की त्रुटि, जो कि चेतना के सामने लायी गयी है ताकि इसपर क्रिया की जाय और इसे सुधारा जाय।

प्रत्येक कठिनाई के पीछे एक सत्य छिपा है; उसे पार कर लो और उस सत्य की अभिव्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये मार्ग साफ हो जायगा।

प्रत्येक प्रतीयमान अभाव उसके पीछे प्रतीक्षा करनेवाले भाव का संकेत होता है।

*

तुम अपनी कठिनाई को कठिन मानकर बड़ा लेते हो, तुम उसे सहल समझो और वह तुम्हारे लिये सहल बन जायगी।

माया केवल इसलिये सत्य है क्योंकि तुम उसे अन्यथा विचारने के लिये तैयार नहीं। एक बार माया से जाग जाओ, तुम केवल यह ही नहीं देखोगे कि यह है ही नहीं, बल्कि यह भी कि यह कभी थी भी नहीं।

*

घटनाएं स्वयं न बड़ी होती हैं न छोटी। उनके पीछे जो शक्तियां काम कर रही होती हैं वही, वास्तव में, उनका महत्त्व निर्धारित करती हैं।

घटनाओं में मूल्य उतना ही है जितनी कि वे द्योतक हैं—द्योतक उन शक्तियों अथवा सक्रिय संभाव्यताओं की जो कि उनमें तथा उन द्वारा क्रियान्वित हो रही हैं।

घटनाएं, अपने बाह्य रूप में, उन्हीं शक्तियों का, जो कि उन घटनाओं द्वारा अभिव्यक्त हो रही हैं अथवा जो उनमें मूर्त्तिमान् हो रही हैं, प्रत्यक्ष खंडन भी कर सकती हैं।

*

मरुभूमि को सामने देखकर पीछे मत मुड़ो। धैर्य और साहस के साथ उसे पार करो—क्योंकि पार है वह प्रदेश जो क्षीर और मधु से परिपूर्ण है।

*

यथार्थ में कोई भी व्यक्ति निर्बल नहीं है, उसका कोई अंग या भाग तक भी नहीं। बस, वैश्व शक्ति, दिव्य माता की ओर उद्घाटित होने की जरूरत है; वे सर्व बल और शक्ति का मूल तथा स्रोत हैं और वे मूक को वाचाल बना सकती हैं तथा पंगु से पर्वत पार करवा सकती हैं।

*

कोई ऐसी भूल नहीं है जो सुधारी न जा सके, यहांतक कि उससे लाभ न उठाया जा सके।

कोई ऐसी हानि नहीं है जो पूरी न की जा सके यहांतक कि बृहत्तर लाभ में न बदली जा सके।

प्रत्येक पतन या असफलता केवल जरा 'पीछे हटना' होना चाहिये ताकि तुम उच्चतर ऊंचाई तक फलांग लगा सको—जबतक कि तुम चोटी पर न पहुंच जाओ और पतन और असफलता से पार न हो जाओ।

*

तुम्हारे भूत ने तुम्हारे वर्तमान को रचा है; अपने वर्तमान द्वारा भविष्य की रचना करो।

तुम अपने भूत को न केवल मिटा ही सकते हो बल्कि उसे ऐसा भी बना सकते हो मानो कि वह कभी था ही नहीं।

*

जब चेतना वर्तमान से ऊपर की ओर उठती और विस्तृत होती है, तब वह केवल भविष्य की ही रचना नहीं करती बल्कि भूत का भी पुनः निर्माण करती है।

*

वर्षों के पापों को मिटाने के लिये वर्षों की जरूरत नहीं है। एक क्षण एक युग को साफ कर सकता है।

एक अकेला निमेष संपूर्ण भूत को विस्फोटित करने के लिये समर्थ स्फुलिंग हो सकता है।

भगवत्कृपा के समुद्र में एक गोता लगाओ, भूत को त्याग कर भविष्य में पुनः-प्रसूत तुम साफ सुथरे बाहर निकलोगे।

*

विष की एक बूंद शरीर के स्वच्छ रुधिर की संपूर्ण धारा को दूषित कर सकती है।

किंतु एक ऐसी पवित्रता भी है, जिसकी एक बूंद पंक और धूलि की संपूर्ण दलदल को स्फटिक जैसा स्वच्छ बना सकती है।

—नलिनीकांत गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५ अगस्त

किसी महापुरुष की जयंती मनाना जब केवल प्रथा-रूप बन जाता है तब उसका वास्तविक रहस्य साधारण जन के लिये नष्टप्राय हो जाता है। किसी भी महापुरुष के जीवन के वास्तविक प्रेरक तत्त्व कहां होते हैं? उसके स्थूल जीवन अथवा बाह्य संयोगों में नहीं बल्कि उसके अंदर, गहराई में, उस-के आध्यात्मिक तत्त्व में। वही तत्त्व जीवन-रचना में अग्रभाग लेते हैं। और जब लोग "जयंतियां" मनाते हैं तब प्रायः महान् व्यक्ति के जीवन के बाह्य स्वरूप और उसके जीवन में घटी घटनाओं तथा उसके किये हुए दृश्य कार्यों के अवलोकन में ही निमग्न हो जाते हैं और उसके महान् जीवन के वास्त-विक प्रेरक बलों को भूल जाते हैं। इस प्रकार वास्तव में महत्त्व के तत्त्वों की लोग जानकर या अन-जान में अवगणना करते हैं।

और, एक अन्य कठिनाई यह है कि महापुरुष अनेक पहलुओंवाले हीरे के समान होता है। जन-समाज का अधिकांश भाग उसके एक-आध पहलू को ही भलीभांति जानकर, वही पहलू उसका समग्र व्यक्तित्व है ऐसा मान लेता है और उसके अन्य अनेक पहलुओं की अवहेलना करता है अथवा उनको भूल जाता है। आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति के संबंध में इस प्रकार की भूलें होने की संभावना कई गुना बढ़ जाती है।

अतः आज १५ अगस्त के दिन श्रीअरविंद के जीवन के संदेश को छोटे से लेख में प्रस्तुत करते हुए मुझे कुछ क्षोभ हो और अपने-आपमें अविश्वास उत्पन्न हो यह स्वाभाविक ही है। क्योंकि उनके जीवन का संदेश अनेक शाखाओं में विभक्त, गंभीर और विशाल है। हमारे देश का शिक्षित वर्ग तो अभीतक श्रीअरविंद को समस्त भारतवर्ष के राज-नीतिक नेता के तौर पर याद करता है। श्रीअर-विंद अर्थात् राष्ट्रीयता के आचार्य; श्रीअरविंद अर्थात् बंगविच्छेद को हटाने के लिये सारे देश में प्रचंड क्रांति फैलानेवाले एक नेता; श्रीअरविंद अर्थात् समस्त भारतवर्ष के नवयुवकों को प्रेरणा देनेवाले एक आदर्शवादी। भारतवर्ष की राष्ट्री-यता के आदियुग में उनका दिया हुआ राष्ट्रीय संदेश अभी भी अनेकों के कर्णपटल पर गूंज रहा होगा। उन्होंने कहा था "राष्ट्रीयता का अर्थ केवल कूट-नीति नहीं; राष्ट्रीयता का अर्थ राजकीय कार्यक्रम मात्र नहीं; राष्ट्रीयता का अर्थ है जीवन का धर्म; अपनी राष्ट्रीयता को प्रतिक्षण अपने जीवन के साथ एक कर दो; राष्ट्र की सेवा के कार्य को भगवान् के चरणों में अर्पण कर दो। याद रखो कि भग-वान् भारतवर्ष का पुनरुत्थान चाहते हैं, इसीलिये हम इस कार्य को धर्म के तौर पर स्वीकार करते हैं।" और उन्होंने विशेष रूप से यह कहा था कि "अपनेमें सुषुप्त भारत-शक्ति को जागृत करो; जीवन में विदेश से लिये हुए प्रतिबिंबों को प्रकट करने के भ्रम को त्याग कर भारत-शक्ति को जीवन में प्रकट करो; उसके द्वारा नूतन भावी का सर्जन करो और जगत् के महान् प्रश्नों में भारत-शक्ति का विशिष्ट साथ दो।" उनके इस राष्ट्रीय संदेश को बहुत लोगों ने उनके जीवन का प्रधान संदेश समझा है।

परंतु मुझे यह प्रतीत होता है कि यह एक प्रचलित भूल है। उनके जीवन का प्रधान स्वर उससे भी बढ़कर गंभीर, गहरा और मानव-जाति की आत्माओं के मौलिक तत्त्वों और प्रेरक बलों को संबोधित करके कहा गया है—ऐसा मेरा अभिमत है। वह प्रधान स्वर अत्यंत व्यापक, विशाल और संपूर्ण है। जगत् में आज आदर्शों, संस्कृतियों और प्रजा-ओं के बीच संघर्ष चल रहा है और मानव-जाति का समस्त भूतकाल इस समय कसौटी की भट्ठी में द्रवित हो रहा है। आज मानव-जाति की प्रधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११९९८४

आवश्यकता है मानव-चिंतन के—मानव-जीवन के परस्परविरोधी तत्त्वों के, विविध संस्कृतियों के मौलिक तत्त्वों के, समन्वय की। जीवन के केवल बाह्य स्वरूपों में निमग्न और ऊपरी जीवन व्यतीत करता हुआ मानव चाहे कुछ भी कहे, परंतु मानव की अंतरात्मा तो मन से परे किसी दिव्य भूमिका के संदेश की राह देख रही है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। मानव का मन सीमित, अपूर्ण और सत्या-सत्य के मिश्रण की भूमिका है। परंतु बुद्धि से परे जो सत्य है उसका दर्शन और उस सत्य की पुनः स्थापना और इस जगत् में उसका आविर्भाव करने के लिये मानव-आत्मा तरस रही है। राष्ट्रीयता और काल के बंधनों को लांघकर, संस्कृतियों के बाह्य और गौण तत्त्वों को छोड़कर, केंद्रीय सत्यों को एक सांकल में संकलित करनेवाले किसी समर्थ व्यक्ति की आज आवश्यकता है। वर्तमान को भावी दिशा निर्देश करनेवाले और मानव-जाति की वृत्तियों और प्रवृत्तियों को नयी दिशा की ओर आकृष्ट करनेवाले किसी एक नेता की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। समस्त मानव-जाति की आ-ध्यात्मिक अभीप्सा और आध्यात्मिक साक्षात्कार जिसमें मूर्त्तिमान् हों ऐसे ही व्यक्ति की आज हमें और जगत् को जरूरत है।

श्रीअरविंद के गंभीर ग्रंथों का अभ्यास करने का जिन्होंने कष्ट उठाया है, जो उनकी दीर्घ अविश्रांत, श्रद्धामयी, एकलक्षी और कठिन तपस्या के संबंध में कुछ जानते हैं तथा उनके कार्य को प्रेरणा देने-वाली विरल श्रद्धा को समझने में समर्थ हैं वे सुगम-ता से अनुभव कर सकते हैं कि आज समस्त भारत-वर्ष में यदि ऐसा कोई व्यक्ति है तो वह श्रीअरविंद ही हैं।

श्रीअरविंद जैसी महान् विभूतियां हमारी मानव-आत्मा में विद्यमान सनातन आध्यात्मिक तृषा को तृप्त करनेवाली आशा और आश्वासन के समान हैं। बाह्य जीवन में और जड़वाद की शुष्क, क्षुद्र और बढ़ती हुई वृत्ति में अधिकाधिक निमज्जित होते हुए हमारे युग में तो सनातन, आध्यात्मिक सत्यों की प्रत्यक्ष मूर्ति-समान श्रीअरविंद जैसी विभूतियां मरुभूमि में शीत शाद्वल प्रदेश के समान विशेषतया लाभप्रद प्रतीत हों तो उसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं। भगवान् को प्राप्त करने के लिये, दिव्य सत्य और ज्ञान-ज्योति को प्राप्त करने के लिये मानव-आत्मा में जो सतत प्रेरणा उद्बुद्ध हो रही है उसको श्रीअर-विंद जैसे "अतिमानव" जागृत रखते हैं और संतुष्ट करते हैं। आध्यात्मिक जीवन सिद्ध करने के लिये आवश्यक दिव्य अग्नि को—आनंद और शक्ति प्राप्त करने के लिये ब्रह्माग्नि को—ऐसे महान् पुरुष मानव के हृदय में सदा प्रदीप्त रखते हैं।

अतः मुझे मालूम होता है कि मानव के विचारों का समन्वय, संस्कृतियों की प्रेरक और क्रियाशील शक्तियों का समन्वय—यह श्रीअरविंद के जीवन का संदेश है। "आंतर जीवन की ओर अभिमुख होओ, अंतर की गहराई में निमज्जित होकर वहां की दिव्य शक्ति, ज्ञान और आनंद को जीवन में प्रकट करो; भावी सृजन के लिये इस प्रकार का आध्या-त्मिक जीवन अनिवार्य है"—यह श्रीअरविंद के जीवन का संदेश है। "आंतर जीवन द्वारा समग्र बाह्य जीवन (व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय) को बनाओ" यह उनके संदेश का प्रधान स्वर है।

जड़वाद में अधिकाधिक मग्न होते हुए हमारे युग को श्रीअरविंद ने बता दिया है कि आध्यात्मिक सत्यों को केवल अंतर में ही प्राप्त नहीं करना है, परंतु जीवन-भर के सभी क्षेत्रों में—मानव-जीवन के एक-एक क्षेत्र में उन्हीं सत्यों का प्रेरक बल प्राप्त करना है। और जड़वाद के जो उत्तम तत्त्व मानव-जाति के लिये हितकारक हैं उनका श्रीअरविंद बिलकुल भी त्याग नहीं करते हैं। आत्मा की विजय के लिये किसी भी क्षेत्र को वे छोड़ नहीं देते हैं।

इसीलिये आज १५ अगस्त के दिन जो शुभ कामना अंतरात्मा में जागृत होती है वह यह है कि जो विरल श्रद्धा, जो असाधारण धैर्य, जो शांत-मूक तपस्या, जो बुद्धि से परे के सत्य का भव्य दर्शन, काल, दिशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बंधनों को लांघकर जीवन-तत्त्वों का साधा हुआ समन्वय, भगवान् को सर्वभाव से समर्पण करने का महान् आदर्श इत्यादि जो-जो उत्तम तत्त्व श्रीअरविंद में मूर्त्तिमान् हैं वे सभी आज समस्त जगत् में, सत्य की प्राप्ति के लिये संघर्ष करते हुए सर्व के अंतःकरण में, अवतरित हों।"

इतना ही पर्याप्त नहीं है, मानव बुद्धि से भी परतर चैतन्य के दिव्य कोश हैं और उनकी प्राप्ति मानव की उत्क्रांति का उद्देश्य है—ऐसा साहसपूर्वक श्रीअरविंद ने—अपनी तपस्या करने के लिये वे जब एकांतवासी हुए तब—कहा था और आज दीर्घ प्रयास के बाद मानव के चैतन्य को उच्च भूमिकाओं की ओर ले जाने का तथा उनके प्रति खोलने का कार्य वे कर रहे हैं। मानव की संपूर्ण प्रकृति का दिव्य चैतन्य के प्रकाश से रूपांतर करने में वे लगे हुए हैं।

जब इस भगीरथ कार्य का ख्याल आता है तब अंतर में एक ही अभीप्सा उद्बुद्ध होती है वह यह कि-"वह सत्य और वह ज्ञान-ज्योति, वह महान् शक्ति और वह आनंद-स्रोत हम सबके अंदर अवतरित हो; और मानव की आत्मा में भगवान् के लिये अधिकाधिक बलवती अभीप्सा जागृत हो; दिव्य जीवन के लिये प्यास हो, उस भव्य जीवन में ज्वलंत "आत्मसमर्पण" का रहस्य हमें प्राप्त हो, और भगवान् को सर्वभाव से सर्वस्व समर्पण करने की अग्नि हमारे जीवन में प्रदीप्त हो। यह समर्पण का धर्म केवल शांति में और विरक्ति में ही नहीं परंतु जीवन के प्रत्येक कार्य में प्रतिपल हमारा जागृत धर्म बना रहे।"

आज १५ अगस्त के दिन किसी ऐसी अंतर की अभीप्सा को सारा दिन जागृत रखना यही श्रीअरविंद की जयंती मनाने का सर्वोत्तम प्रकार है।

—अम्बालाल पुराणी

पांडिचेरी के ऋषि*

आज का दिन पांडिचेरी में प्रति वर्ष ४ बार होनेवाले श्रीअरविंद-दर्शन के शुभ दिनों में से है। श्रीअरविंदाश्रम में श्रीअरविंद के भवन का द्वार खुलता है और सैकड़ों नर-नारी तथा बालक-बालिकाएं—आश्रमवासी लोग तथा अन्य जन जो देश-विदेश से इस अद्वितीय अनुभूति के लिये आये होते हैं—उनके सामने से गुजरते हैं। जिनके लिये यह प्रथम अवसर होता है वे नयी अंतर्दृष्टि और जीवनसंबंधी नयी बहिर्दृष्टि को लेकर वापिस जाते हैं; जो लोग अपनी अनुभूति को ताजा करते हैं वे नूतन सम्मिलित पुरुषार्थ के रूप में अपनी श्रद्धा को बलवत्तर अनुभव करते हैं। महापुरुषत्व को, जैसा कि इसे हमने भारतवर्ष में समझा है, अपना प्रभाव सीधे ही डालना चाहिये। महापुरुषों की संगति को उन्नतिकारी माना गया है। श्रीअरविंद के सम्मुख जाना किन्हीं ऐसे-वैसे दर्शन के तुल्य नहीं है। यह एक भावात्मक अनुभव है जो व्यक्ति के जीवन को सर्वथा नयी दिशा की ओर मोड़ सकता है। "क्या वे बातचीत नहीं करते?" जिज्ञासु जन पूछते हैं। "उनका मौन अत्यंत वाग्बलपूर्ण है", मैं उत्तर देता हूं।

---

*इस लेख के लेखक श्री एन० एन० कौल एक बार पांडिचेरी आये थे तथा उन्होंने श्रीअरविंद के दर्शन भी प्राप्त किये थे। यह लेख प्रधानतया दर्शन के अनुभव से ही प्रेरित हुआ हुआ है। यह बम्बई के "Social Welfare" में पहले प्रकाशित हो चुका है। और हम उस पत्र के अनुगृहीत हैं। लेख विशेष लोकप्रिय सिद्ध हुआ है। हमें विश्वास है हमारे हिंदी पाठक इसे पढ़कर आनंद लाभ करेंगे। —सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविंद अपने जीवन भर क्रांतिकारी रहे हैं। परंतु स्थितिशील क्रांतिवादियों से भिन्न, वे एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पहुंचे हैं और आज वे युग-युगव्यापी अत्यंत क्रांतिमय साहस-कार्य के प्रारंभ-कर्त्ता हैं, वह कार्य आवाहन के रूप में, उनके अपने हृदयस्पर्शी शब्दों में, इस प्रकार वर्णित है:

रूपांतर कर मर्त्य देह का
मधुर चमत्कृत छन्द समान;
स्वर्ग-धरा-बिच सेतु बांध दे,
अमर बना काल-संतान।*

आप कहेंगे कि यह वह आशा और आदर्श है जिसे मानवजाति के आध्यात्मिक नेता युगयुगांतर से, सभी देशों और कालों में, परिपुष्ट करते आ रहे हैं! हां। किंतु श्रीअरविंद एक कदम आगे जाते हैं। वे कहते हैं कि अक्षमता, रोग और मृत्यु से ऊपर उठ जाना मनुष्य के लिये केवल संभव ही नहीं अपितु उसके लिये यही एकमात्र मार्ग है जिससे कि वह इस भूतल पर अपने जीवन को कृतार्थ कर सकता है। इनसे पूर्व अनेक ऋषि हो गुजरे हैं किंतु व्यक्तियों की पूर्णता से परे जाने का किसीने भी साहस नहीं किया। मनुष्यजाति के इतिहास में पहली बार, एक ऋषि जन्मे हैं जो, अनन्त धैर्य के साथ, समष्टिगत पूर्णता की आधारशिला स्थापित करने में संलग्न हैं और उस नये पथ का आयोजन कर रहे हैं जो कि मनुष्य को अपने विकासात्मक आरोहण के लिये अपनाना होगा।

ऐसे लोग भी हैं जो कि अलीपुर बम्ब केस के अरविंद घोष, 'वन्दे मातरम्' के ओजस्वी लेखक, राष्ट्रीयता के स्फुरणाशाली कवि को अधिक पसंद करते हैं आज के योगी की अपेक्षा जो कि उनकी सम्मति में कमरे में बंद पड़ा हुआ समय गंवा रहा है। अपनी इस पसंदगी में वे युक्तिसंगत हो सकते हैं। श्रीअरविंद अपने जीवन-विकास की उस अवस्था में से गुजर चुके हैं जिसमें कि ये लोग फंसे हुए हैं। परंतु फिर भी वे इन उत्साहशाली लोगों को ऐसा नहीं कहेंगे कि तुम आश्रम में बंद पड़े रहो। वे इन्हें शक्तिशाली कर्मण्य व्यक्ति बनाने के लिये इनसे प्रेम करेंगे। भारतीय स्वाधीनता के प्रेमी उनके युवावस्था के लेखों से आज भी प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। आज श्रीअरविंद उनसे जो कुछ कहना चाहेंगे वह बस यही है: 'अपने आंतर जीवन की उपेक्षा मत करो। यह ठीक है कि बाह्य जगत् के कष्ट-क्लेश और अव्यवस्था का तुम्हें विशेष ध्यान है। किंतु यह मुख्यतया उस अव्यवस्था का परिणाम है जो मनुष्यों के मनों में, आत्मा द्वारा बंधनमुक्त न हुए हुए मनों में, विद्यमान है।' आंतरिक योजना को अवश्य ही चरितार्थ करना होगा ताकि बाह्य योजना फलवती और स्थायी हो सके। सर्वांगीण योग आध्यात्मिक शिक्षण के विज्ञान व कला का समन्वय है। क्या यह पलायन-वृत्ति है? अथवा क्या यह अति-आधुनिकता है? इसके विपरीत, क्या वे पलायनवादी नहीं हैं जो क्षणिक सुखों और पिच्छिल आसक्तियों की खातिर अपनी संभाव्यशक्तियों की पूर्ण चरितार्थता से किनारा खींचते हैं?

तथापि यह प्रश्न पूछा जाता है: वे अपने संदेश को आकाशध्वनित (ब्राडकास्ट) क्यों नहीं करते? वे बाहर क्यों नहीं आते? इस मांग की और आगे व्याख्या करनी हो तो मैं कह सकता हूं कि लोग चाहेंगे कि वे प्रेस कान्फरेंसों को आयोजित करें, रेडियो पर भाषण दें, जलूसों का नेतृत्व करें, समितियों और उपसमितियों में वाद-विवाद करें, प्रस्ताव उपस्थित करें अथवा शायद यह भी कि नयी कैबिनेट में किसी विभाग के अध्यक्ष बनें। अस्तु, जहांतक उनके

*Transform the body of the mortal like a sweet and magical rhyme;
Bridge our earthhood and heavenhood, make deathless the children of Time.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदेश का प्रश्न है, वह दिया जा चुका है। वह उनकी उन बीसियों पुस्तकों में सुरक्षित है जिन्हें कि आज जो कोई भी इच्छुक हो सुगमतया प्राप्त कर सकता है। बाहर आने और वक्तृताएं देने, फोटो खिचवाने और अखबारों के मुख्य मोटे शीर्षकों में अपनी खबर छपवाने की जो बात है उसके संबंध में आप मेरे साथ सहमत होंगे कि इस सबकी कदाचित् आवश्यकता नहीं। मन को नयी दिशा में ले जाने का मार्ग दिखाना ढोल पीटने जैसा काम नहीं है। भाषण देना जोश-खरोश और क्षणिक उत्तेजना को पैदा करने के लिये उपयोगी हो सकता है, किंतु विकास एक श्रमसाध्य प्रक्रिया है, विशेषकर जब मनुष्य में इसे चेतनापूर्वक होना होता है तब तो यह और भी अधिक कष्टसाध्य होता है।

और फिर, उन्हें इसकी कोई जल्दी नहीं है। इसी विश्वास के मूल में विद्यमान है वह परम सत्य जिसे कि व्यक्त करना उनका मिशन है। वे दृढ़-मूल असंतोष और भय के साथ ही नहीं अपितु जीवन के साक्षात् शत्रु—मृत्यु—के साथ लड़ने के लिये बद्ध-परिकर हैं। आप चौंक जायंगे; वे सचमुच गंभीरतापूर्वक कटिबद्ध हैं। आपमेंसे कुछेक शायद हंसी भी उड़ावें; आपके लिये और कोई चारा भी नहीं। विचार की युगों से बनी हुई आदत का भार आपके ऊपर बोझल जूए की तरह लदा है। वे इसे उठाना चाहते हैं। कार्य अति गुरुतर है। आप पूछ सकते हैं कि क्या इस कार्य में शक्ति लगाना सार्थक है, और शायद आप सीधा नकारात्मक जवाब नहीं देंगे। कारण, आप पुनः इस उक्ति की शरण लेंगे: 'यह असंभव है'। उन्होंने अपने एक बृहत् ग्रंथ 'दिव्य जीवन' (The Life Divine) में इस असंभवता का विस्तारपूर्वक विश्लेषण और निराकरण किया है। इस पुस्तक के स्वाध्याय से प्रत्येक व्यक्ति को बहुत बड़ा लाभ प्राप्त हो सकता है। बीसवीं शताब्दी के इस सबसे महान् ग्रंथ का हृदय-स्पर्शी संदेश यह है: अतिमानस (विज्ञानतत्त्व) की अभिव्यक्ति होने पर, जो कि अब अवश्यम्भावी है और जिसके शुभागमन के लिये हम सचेतनतया सहयोग कर सकते हैं, भौतिक सत्ता अर्थात् शरीर अमर हो जायगा, प्राण हर्ष से स्वतःपर्याप्त, आत्माराम, हो जायगा, और मन प्रज्ञा में प्रतिष्ठित होगा।

मेरे मित्र आत्मौचित्याभिमानी भाव में कहते हैं: हम ऐसे मनुष्य को पसंद करते हैं जो, जवाहरलाल की भांति संसार-संग्राम के बीच में हो और जनता की सेवा करता हो। किसने कहा है कि हम विचारस्वातंत्र्यप्रेमी लोग जवाहरलाल और उन जैसे अन्य पुरुषों की स्तुति नहीं करते? परंतु समस्याओं को उलझाते क्यों हैं? यदि हम सब-के सब जवाहरलाल के पीछे चलते और साम्यवादी ढंग से जीवन-यापन प्रारंभ कर देते तो भारतवर्ष की स्थिति कुछ की कुछ होती। परंतु मनुष्यों के इरादों और शब्दों में सदा ही महान् विषमता होती है। दूसरों में जो अच्छी बातें हैं उनकी हम प्रशंसा करते हैं और अपने आप बुरे काम करते चले जाते हैं। संभवतः, बुरी बातों की प्रशंसा करने की अपेक्षा यह (बुरे काम करना) भी अधिक अच्छा है, जैसा कि फासिस्टों ने किया। अनेक बार हम यह भी नहीं जान पाते कि हमें क्या करना चाहिये। किसी तीसरे तटस्थ मनुष्य के पास ही संसार की बुराइयों को दूर करने का नुस्खा होता है। सब मामले प्रायः सदा ही बातों बातों में रह जाते हैं। इससे भी अधिक शोचनीय बात यह है कि बुद्धि-विलासी समालोचक उन लोगों पर तानों की बौछार करने के लिये सदा उद्यत रहते हैं जो अपने ही तरीके से काम कर रहे हैं, और जिनका कार्य उस सांचे के अनुरूप नहीं जिसे कि उनका मानसिक विकास बुद्धिगम्य कर सकता है। हमारे देश में काफी नेता हैं, इतने अधिक कि उनके दलों में भी अवांतर दल हैं, और जब वे ब्रिटिश सरकार से लड़ाई नहीं कर रहे होते तब आपस में लड़ते रहते हैं। हमारे बीच गांधीजी भी हैं जो इस देश को विदेशी शासन से ही नहीं अपितु पारस्परिक अविश्वास और घृणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मुक्त करने के लिय ऐतिहासिक संघर्ष में संलग्न हैं। यदि हम कर्म के लिये उत्साह में भरकर आवेशयुक्त हो रहे हैं तो हम उनका (गांधीजी का) अनुसरण कर सकते हैं, या फिर अपने हीनतर प्रकाश का। श्रीअरविंद और उनकी अतिमानस की प्रयोगशाला को हम मजे में एक तरफ छोड़ सकते हैं। यदि हम जरा अधिक उदारचेता और सामर्थ्यशाली हों तो हम श्रीअरविंद को समझने का यत्न कर सकते हैं। समय बतावेगा कि वे सही थे। संभव है कि उनका अनुभव उन्हें यह बताता हो कि वर्तमान समष्टिगत चेतना के विषम क्षेत्र पर सीधा आक्रमण फिलहाल सहायक न होगा और यह कि इस समय जो कुछ किया जा सकता है वह बस पांडिचेरी से किया जानेवाला सीमावर्त्ती आक्रमण ही है।

भविष्य के लिये योजनाएं बनानेवालों को उस कार्य से लाभ उठाना चाहिये जिसे कि श्रीअरविंद २५ वर्ष से भी अधिक दीर्घ काल से करते आ रहे हैं। जैसे कि व्यक्ति को सुरक्षित रखने की इसलिये आवश्यकता है कि उन्नति के लिये संवेग जीवित बना रहे वैसे ही आध्यात्मिक क्रांति को साम्यवादाश्रित नयी व्यवस्था के कार्य के साथ हाथ में हाथ मिलाकर चलना चाहिये। —एन. एन. कौल

प्रथम दृष्टिपात में ही मैं यह देख पाया कि श्रीअरविन्द आत्मा की खोज में संलग्न रहे हैं और उसे उन्होंने प्राप्त कर लिया है, और इस आत्मोपलब्धि के लम्बे क्रम में अन्तर्ज्ञान की मौन शक्ति को अपने भीतर संचित कर लिया है। उनका मुखमण्डल आन्तर ज्योति से जाज्वल्यमान था।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्रीअरविन्द-दर्शन के अवसर पर दर्शनार्थी जन सर्वश्रीमय और अध्यात्मवैभवमय 'पुरुष' के दर्शन प्राप्त करते हैं, और तब वे अद्वितीय 'पुरुष' का अवश्य ही कुछ साक्षात्कार करते हैं, उसकी शक्ति की प्रखर प्रभा को अनुभव करते हैं, तथा उसके व्यक्तित्व की वास्तविक तरंगों का संस्पर्श तक प्राप्त करते हैं। निश्चय ही उनकी साक्षी अत्यन्त अमूल्य होती है।

—के. आर. श्रीनिवास आयङ्गर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुने हुए फूल

योग का अभिप्राय है आत्मा की अशेष बहुविध गभीरताओं में डुबकी लगाना।

*

निश्चय ही, एकाग्रता योग की प्रथम शर्त्त है।

*

समस्त सत्ता को भगवान् पर एकाग्र करना योग का स्वरूप है।

*

मनुष्य अपने समस्त पुरुषार्थ में श्रद्धा के सहारे ही आगे बढ़ता है।

*

जब साक्षात्कार प्राप्त होता है, श्रद्धा ज्ञान में कृतार्थ और परिसमाप्त हो जाती है।

*

आन्तरिक विकास ही मानव जीवन का संपूर्ण अर्थ और सार है।

*

निखिल कर्म भगवान् के प्रति यज्ञ के रूप में अवश्यमेव करने ही चाहियें।

*

योग शक्ति को विकसित करता है।

*

पूर्ण निश्चलनीरवता में ही परम नीरवता सुनायी देती है।

*

पवित्रता ही वह अवस्था है जिसमें कि एकाग्रता अटूट रहती है।

*

महत्त्वाकांक्षा का एक अत्यन्त सामान्य रूप है मानवजाति की सेवा करने का विचार।

*

महत्त्वाकांक्षा के कारण अनेक योगियों का विनाश हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द

विज्ञान और मशीन के वर्तमान युग में श्रीअरविंद भारत की सनातन आध्यात्मिक प्रतिभा के एक अलौकिक महापुरुष हैं। वे आध्यात्मिक सत्य के विशाल और विस्तृत जगतों में अपूर्व अन्वेषक और सिद्ध-विजेता के रूप में आज रजोगुणी कर्मशील बौद्धिक मानवसमाज के सामने महान् आश्चर्यस्वरूप उपस्थित हैं। आजसे लगभग ४० वर्ष पहले उन्होंने प्राचीन ऋषियों के ब्रह्मतेज और आत्मबल को क्रियात्मक रूप में अनुभव किया था—क्षात्रतेज और बाहुबल से उसकी विशेषता को महसूस किया था। उसीको पूर्णतया चरितार्थ करना और उसी शक्ति से मानव का उद्धार करना उनका कार्य है। या अधिक स्पष्ट रूप में, मानव चेतना को, जो कि वर्तमान स्वरूप में राग-मोह-युक्त है, शुद्ध बनाकर उसे दैवी गुणों से युक्त करना। मनुष्य को 'मन' से विकास की 'अतिमन'-स्थिति की ओर प्रेरित करना और ले जाना। मनुष्य के अंदर अविकसित देवत्व को विकसित करना। यह सामान्य मानव-चेतना का विकास-कार्य वह अपना ध्येय और कार्य मानते हैं और श्रीअरविन्द आश्रम पांडिचेरी, इस सम्बन्ध में, उनके कार्य का केन्द्र है और उसके पिछले ३० वर्षों का विकास तथा उनके सामान्य कार्य का विकास और प्रभाव उनके ध्येय और कार्य के परिचायक हैं; परन्तु उनका कार्य मानव की अन्तश्चेतना से सम्बन्ध रखता है।

अन्तश्चेतना के विकास के अपने नियम हैं, अपने उतार-चढ़ाव हैं। मानो किसी मनुष्य में एक कुवृत्ति विशेष प्रबल हो उठती है। सामान्य दृष्टि से हम उसे आपत्तिजनक समझेंगे, परन्तु योगदृष्टि से वह व्यक्ति के लिये शुभ अवसर हो सकता है, क्योंकि उससे वह वृत्ति अपने आपको उस समय, सम्भव है, क्षीण कर रही हो। वर्तमान मनोविज्ञान मानसिक संस्कारों के उतार-चढ़ाव के नियमों को काफी हद तक जान पाया है, परन्तु योगविद्या एक अत्यन्त गम्भीर मनोविज्ञान है जो हमारे अन्तर्जगत् के नियमों को खूब जानता है। भारतीय प्रतिभा ने वेदकाल में ही प्रत्यक्ष अनुभव किया था कि सत्य सत्ता एक निहित अन्तश्चेतना है, क्या व्यक्ति में और क्या जगत् में, बाह्य स्वरूप उसकी अभिव्यक्ति मात्र हैं। श्रीअरविन्द के कार्य की कुछेक अभिव्यक्तियां हम जरूर देख सकते हैं, परन्तु उनके कार्य को प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिये पहले उस स्तर का अनुभव होना जरूरी है जिस स्तर पर कि वह कार्य करते हैं। एक प्रसंग में, जब कि किसीने उनकी जीवनी लिखने आदि का जिक्र किया था, उन्होंने कहा कि किसीके लिये उनकी जीवनी लिखना सम्भव नहीं क्योंकि उनका जीवन उपरितल पर नहीं रहा है। जो उन्हें कुछ अधिक समीप से जानते हैं, वे भी बतलाते हैं कि श्रीअरविन्द का जीवन और कार्य प्राचीन ब्रह्मर्षियों की तरह है जो मौन में ही अपना विशेष महत्त्व का कार्य किया करते थे, यद्यपि उस कार्य का प्रभाव और फल मनुष्य जरूर अनुभव कर सकता है।

श्रीअरविन्द मानव के लिये आध्यात्मिक भविष्य अवश्यंभावी मानते हैं। उनके अनुसार यह उसके विकास-क्रम का ध्येय है। वे वर्तमान जड़वाद के साम्यवाद आदि अनेक मतों से विशेष आशंकित नहीं हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि मानव आत्मा के लिये ये विकास में क्रिया-प्रतिक्रिया-रूप पड़ाव हो सकते हैं, उसके लिये ध्येय और लक्ष्य नहीं बन सकते। आज वे विश्वासपूर्वक अनुभव और परीक्षण के बल पर संसार को संदेश सुनाते हैं कि जैसे जड़-प्रकृति में से प्राण निकला और फिर प्राण में से मन विकसित हुआ उसी प्रकार मन अपनेंसे एक बड़ी चेतना को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैदा करना चाहता है। वह है अतिमानस-चेतना। प्रकृति की प्रसुप्त, गुप्त चेतना उत्तरोत्तर वनस्पति, पशु और मनुष्य में अभिव्यक्त होती हुई अब अतिमानस-चेतना के पूर्णतर स्वरूप में अभिव्यक्त होने को अग्रसर है। इस विकास के युगान्तर की घोषणा आज उनकी घोषणा है। यही मानव के लिये उनका संदेश है। इसीके लिये उनकी रहस्यमयी तैयारी है और वह तैयारी ही उनकी वर्तमान देन है।

इस देन को आज के अनेक साधकों ने किञ्चित् अनुभव किया है। यहां उनके ग्रन्थों द्वारा साहित्य, दर्शन, योग-विद्या, समाज-शास्त्र, राजनीति आदि की देन की चर्चा नहीं है, चर्चा उनकी निज की विशेष प्रतिभा, ब्रह्मतेज और आत्मबल की ही है। लगभग प्रत्येक साधक जिसने शुद्ध हृदय से अपने आन्तरिक विकास के लिये उनकी सहायता और कृपा की अभीप्सा की है, वह जानता है कि उसे इस प्रकार अपने आन्तरिक संघर्षों में सरलता प्राप्त हुई है तथा उसका विकास अतितीव्र गति से आगे बढ़ा है। यह साधकों का सामान्य अनुभव हम श्रीअरविन्द की प्रत्यक्ष देन अनुभव करते हैं और यह वर्तमान देन भविष्य के लिये हमें निश्चिन्त बनाती है।

श्रीअरविन्द का अध्यात्मवाद जरूर कुछ विलक्षण है। इसमें व्यक्तिगत मुक्ति अन्तिम ध्येय नहीं, यद्यपि व्यक्ति को आत्मिक स्वातन्त्र्य प्राप्त होगा ही। मुख्य ध्येय है मानव मात्र की सामान्य चेतना को उत्तरोत्तर स्वार्थरहित, उदार तथा दैवी गुणोंवाली बनाते हुए अतिमानस स्तर तक ले जाना। जैसे उनका यह संदेश अलौकिक और विलक्षण है लगभग वैसे ही श्रीअरविन्द के जीवन का स्थूल घटना-क्रम भी विलक्षण रहा है।

उनका जन्म १५ अगस्त के दिन सन् १८७२ में कलकत्ते में हुआ था। पिता डा० कृष्णधन घोष अंग्रेजी संस्कृति और सभ्यता के विशेष भक्त थे। वह समय भी वैसा ही था। वह अपने बच्चों को पूरे अंग्रेजी ढंग की शिक्षा देना चाहते थे। सात वर्ष की आयु में ही उन्होंने श्रीअरविन्द को इंग्लैंड भेजा और वहां वह चौदह वर्ष रहे। स्कूल और यूनिवर्सिटी की सभी शिक्षा वहीं प्राप्त की। परीक्षाओं में विशेष प्रतिभा दिखलायी। छात्र-वृत्तियां और पारितोषिक प्राप्त किये। अंग्रेजी के अतिरिक्त लेटिन, फ्रैंच, जर्मन आदि भाषायें भी सीखीं और योरुप के साहित्य को खूब ही पढ़ा। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में ट्रिपौस पास करने के बाद आई. सी. एस. की परीक्षा में बैठे और उत्तीर्ण हुए। परन्तु घुड़सवारी की परीक्षा के दिन उपस्थित न रहने से उस सर्विस में अस्वीकृत हो गये। गायकवाड़ बड़ोदा उस समय वहीं थे। उनसे भेंट हुई और उन्होंने उन्हें राजकीय कार्य में लेना चाहा। श्रीअरविन्द ने स्वीकार किया और वे बड़ोदा आकर कार्य करने लगे। कई स्थितियों में कार्य किया। अन्त में स्थानीय कालिज के उपाचार्य थे। श्रीअरविन्द इंग्लैंड से वापिस सन् १८९३ में लगभग १४ वर्ष की पढ़ाई के बाद लौटे। तब आपको अपनी मातृभाषा बंगाली नये सिरे से सीखने की जरूरत पड़ी। बचपन में जाने से पहिले जितनी सीखी थी वह इतने लम्बे विदेशवास से भूल चुके थे। बंगाली और फिर संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं को बारी-बारी सीखना और उनके द्वारा भारतीय संस्कृति को समझना शुरू किया। बड़ोदे में श्रीअरविन्द सन् १८९३ से १९०६ तक रहे और यह समय विशेष रूप से अध्ययन और विचार का रहा। शुरू के वर्ष भारतीय संस्कृति के जानने और समझने में लगे और अन्त के वर्षों में उनकी निजी विचारधारा विशेष रूप से योग और राजनीति की ओर प्रस्फुटित हुई।

१९०६ में जब कि बंगाल को लार्ड कर्जन ने दो टुकड़ों में तोड़ डाला और उसके विरोध में एक सार्वजनिक आन्दोलन खड़ा हो गया श्रीअरविन्द अपने बड़ोदा के अध्यापन-कार्य को छोड़कर पूरे रूप से राजनीति के क्षेत्र में आ गये। १९०६ से १९०९ तक आप राजनीतिक कार्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संलग्न रहे। आप उस समय अग्रिम राष्ट्रीय नेता थे। देश के लिये पूर्ण स्वाधीनता के उद्देश्य का प्रतिपादन आपने ही किया। 'वन्दे मातरम्' और 'कर्मयोगिन्' पत्र भी आपने इन्हीं दिनों निकाले थे और इनके लेखों के वृद्ध पाठक आज भी उन्हें याद कर उत्साहित और आह्लादित हो उठते हैं। सरकार ने आपको दो बार राजविद्रोह में पकड़ लिया, परंतु मुकदमे सफल न हुए। दूसरे मुकदमे के दौरान में आप एक वर्ष जेल में रहे। यह एकांत का वर्ष आपके लिये अत्यंत महत्त्व का रहा। इसमें जो आपको आध्यात्मिक अनुभव हुए उन्होंने आपके भावी प्रोग्राम की दिशा बदल दी। उन्हें ब्रह्मतेज और आत्मबल की महत्ता और सर्वोत्कृष्टता का मानो साक्षात्कार हो गया। जेल से निकलने के बाद आपने उत्तरपाड़ा भाषण में अपने कारावास के अनुभवों का काफी संकेत दे दिया था। उसी समय के प्राप्त आदेश के अधीन ही आप फिर राजनीति से खिच गये और अधिकाधिक अपने आंतरिक योग-कार्य में प्रवृत्त होते गये।

१९१० में आप पांडिचेरी चले आये, जहां २४ नवम्बर १९२६ से, जो कि आपका सिद्धि-दिवस है, एक आश्रम का संगठन होना शुरु हो गया। आज उस आश्रम में लगभग ६०० व्यक्ति हैं जो श्रीअरविंद की पवित्र प्रेरणा से भगवत्-प्राप्ति को ही एकमात्र जीवनोद्देश्य स्वीकार कर, उसके लिये प्रयत्नशील हैं।

श्रीअरविंद एक अत्यंत प्रतिभा-सम्पन्न महापुरुष हैं। योग तथा ब्रह्मविद्या, राजनीति, काव्य, दर्शन आदि अनेक क्षेत्रों को आप अधिकृत करते हैं। इन सब क्षेत्रों का परिचय देना यहां संभव नहीं। दर्शन के क्षेत्र में आपके दो ग्रंथ विशेष प्रसिद्ध हैं—'गीता-प्रबंध' और 'दिव्य जीवन'। 'दिव्य जीवन' एक स्वतंत्र दार्शनिक रचना है जिसे कि आज संसार भर की एक महती कृति के रूप में अनुभव किया जा रहा है।

श्रीअरविंद के अनुसार मूल सत्ता एक निहित विश्वचेतना-रूप ब्रह्म है, अथवा वह चेतना स्थूल जड़-सत्ता, प्राण, मन आदि के विकासक्रम में अपने आपको अभिव्यक्त तथा चरितार्थ कर रही है। ब्रह्म सत्य है, परंतु जगत् मिथ्या नहीं अपितु ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। मानव का व्यक्तित्व भी लहर-रूप नहीं जो कि ब्रह्मरूप समुद्र में लय हो जायगा, बल्कि अहंकार के अत्यंत त्याग के बाद व्यक्ति की आत्मा ब्रह्म के साथ और उसके द्वारा जगत् के साथ और जगत् के सब प्राणियों के साथ आंतरिक एकत्व अनुभव करते हुए एक अपूर्व निजी भाव को अनुभव करेगी। व्यक्ति और समष्टि के संबंध का यह अनुपम दृष्टि-बिंदु है। आध्यात्मिक सत्ता निर्गुण, विशेषरहित या शून्य चेतना नहीं, बल्कि एक परिपूर्ण चेतना है जिसमें सभी गुण और सभी विशेष उपस्थित हैं। इसी विचार के कारण—और यह विचार श्रीअरविंद के दृढ़ योगानुभव में स्थित है—व्यक्ति के लिये व्यक्तिगत मुक्ति संभव नहीं। व्यष्टि अंग है, विश्व की अभिव्यक्ति है, वह समष्टि से अपने आपको सर्वथा अलग नहीं कर सकता। उसकी उन्नति में समष्टि का हित है और समष्टि के विकास में हर एक का, व्यष्टि का हित है। भारतीय दर्शन-शास्त्र में यह एक नया अनुभव है, नया विचार है।

पुनर्जन्म, कर्म तथा मानवीय जीवन के अन्य अनेक पक्षों पर 'दिव्य जीवन' में मार्मिक प्रकाश डाला गया है। उनकी तथा सत्ता के अन्य अनेक प्रश्नों की चर्चा का यहां अवकाश नहीं, परंतु भारतवर्ष ने 'दिव्य जीवन' के रूप में निश्चय ही संसार को एक महती देन दी है।

पर यह देन कितनी भी बड़ी क्यों न हो, श्रीअरविंद के दर्शन की संसार कितनी भी चर्चा क्यों न करे, वास्तव में जो उनकी महत्तर देन है वह है उनका ब्रह्मतेज, आत्मबल, अध्यात्म-शक्ति। यही हैं वे लोकोत्तर साधन जिनसे मानव-प्रकृति का रूपांतर संभव है। इन्हींके प्रभाव को ही जिज्ञासु कम अथवा अधिक अनुभव कर पाता है। इन्हींके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रताप से वह शक्ति, प्रकाश और उत्साह लाभ करता है और अपने जीवन-विकास के चरम शिखर की ओर अदम्य उमंग को लेकर आगे बढ़ता है।*

—इन्द्र से

*यह लेख 'मानव धर्म' के विशेषांक 'महापुरुषांक' के लिये लिखा गया था। श्रीअरविंद की जयंती पर यह हमारे पाठकों की भेंट है। —सं०

विजय-ध्वज

हे देव! हे श्रीअरविन्द! आज तुम्हारा दिव्य विजय-दिन है।

इस धराधाम पर आज से पौन शताब्दी पहले आज ही के दिन तुम्हारा प्रथम दिव्य आविर्भाव हुआ था। पृथ्वी की आकुल पुकार, भारत के आर्त्त-नाद और मनुष्यों की आन्तरिक अभीप्सा और सन्तों की युग-युग की चेष्टा और प्रार्थना के फलस्वरूप तुम्हारा इस मेदिनी पर दिव्य जन्म हुआ था।

वह दिन धन्य था, पृथ्वी सनाथ हुई, भारत महिमान्वित हुआ, मनुष्य के हृदय में—यावत् प्राणी, पशु-पक्षी, वृक्ष-लता-गुल्म में, जड़ के कण-कण में आशा और दिव्य आनन्द का संचार हुआ था।

वह दिन धन्य था।

प्रकाशघन! हे चक्रवर्तिन्! उस दिन से आज-तक तुम इस दुखी दुनिया के दुःख दूर करने में सतत लगे रहे, युद्ध करते रहे। अन्धकार की, असत्य की, अज्ञान की संभूत शक्तियों पर तुमने, एक-एक करके, सभीपर विजय पायी।

हे पुरुषश्रेष्ठ! हे देव! आज तुम्हारा एक और महान् विजय-दिन है। तुम्हारी करुणा और तेज के द्वारा पृथ्वी का घन अन्धकार, भारत की दासत्वशृंखला और मानव का अज्ञान आज छिन्न-भिन्न हो गया है और हो रहा है। तुम्हारा सुयश दिव्य मार्तण्ड की किरणों की तरह दशों दिशाओं में फैल गया है। तुम्हारी विजय की दिव्य पताका आज इस भूमंडल पर प्रतिष्ठित हो गयी है। आज तुम्हारे इस पुण्य जन्मदिन के दिन ही यह सब ओर दिग्दिगन्तों में लहरा रही है।

आज का दिन धन्य है।

गुरुदेव! अन्तर्यामिन्! आज तुम्हारी यह दिव्य पताका, पृथ्वी पर आनेवाली एक और दिव्य, नवीन विशाल विजय की स्पष्ट घोषणा कर रही है। वह 'विजय' तुम्हारी करुणा और प्रताप से शीघ्र ही आनेवाली है।

देवाधिदेव! आज सारा जगत् आनन्दित है। मनुष्य, देव, किन्नर, गन्धर्व, अप्सरा, पशु-पक्षी, नद नदी, पर्वत, वन-उपवन, सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र, व्योम वायु जल अनल, स्वर्ग और वसुन्धरा सब पुलकित होकर तुम्हारी विजय-स्तुति गा रहे हैं। तुम्हारी समस्त सन्तान, शिष्य, भक्तवृन्द आनन्द में भरकर तुम्हारी कृपा से आज सब आनन्दमग्न हो गये हैं; और तुम्हारी इस विजय-पताका को नील गगन में लहराते हुए देखकर सबका चित्त मानो अनन्त में—तुममें—रमण कर रहा है। सभी तुम्हारी इस विजय-ध्वजा को प्रेम से प्रणाम कर रहे हैं। प्रभो! मैं भी तुम्हारी इस दिव्य ध्वजा को नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूं।

आज से पृथ्वी पर नवयुग का आरम्भ हो गया।

आज भारत ने स्वाधीनता के अमृत का प्रथम घूंट पी लिया।

आज मानवता ने दिव्यता की ओर पहला कदम उठा लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Fifteenth of August 1947

AUGUST 15th is the birthday of free India. It marks for her the end of an old era, the beginning of a new age. But it has a significance not only for us, but for Asia and the whole world; for it signifies the entry into the comity of nations of a new power with untold potentialities which has a great part to play in determining the political, social, cultural and spiritual future of humanity. To me personally it must naturally be gratifying that this date which was notable only for me because it was my own birthday celebrated annually by those who have accepted my gospel of life, should have acquired this vast significance. As a mystic, I take this identification, not as a coincidence or fortuitous accident, but as a sanction and seal of the Divine Power which guides my steps on the work with which I began life. Indeed almost all the world movements which I hoped to see fulfilled in my lifetime, though at that time they looked like impossible dreams, I can observe on this day either approaching fruition or initiated and on the way to their achievement.

I have been asked for a message on this great occasion, but I am perhaps hardly in a position to give one. All I can do is to make a personal declaration of the aims and ideals conceived in my childhood and youth and now watched in their beginning of fulfilment, because they are relevant to the freedom of India, since they are a part of what I believe to be India's future work, something in which she cannot but take a leading position. For I have always held and said that India was arising, not to serve her own material interests only, to achieve expansion, greatness, power and prosperity,—though these too she must not neglect,—and certainly not like others to acquire

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

domination of other peoples, but to live also for God and the world as a helper and leader of the whole human race. Those aims and ideals were in their natural order these: a revolution which would achieve India's freedom and her unity; the resurgence and liberation of Asia and her return to the great role which she had played in the progress of human civilisation; the rise of a new, a greater, brighter and nobler life for mankind which for its entire realisation would rest outwardly on an international unification of the separate existence of the peoples, preserving and securing their national life but drawing them together into an overriding and consummating oneness; the gift by India of her spiritual knowledge and her means for the spiritualisation of life to the whole race; finally, a new step in the evolution which, by uplifting the consciousness to a higher level, would begin the solution of the many problems of existence which have perplexed and vexed humanity, since men began to think and to dream of individual perfection and a perfect society.

India is free but she has not achieved unity, only a fissured and broken freedom. At one time it almost seemed as if she might relapse into the chaos of separate States which preceded the British conquest. Fortunately there has now developed a strong possibility that this disastrous relapse will be avoided. The wisely drastic policy of the Constituent Assembly makes it possible that the problem of the depressed classes will be solved without schism or fissure. But the old communal division into Hindu and Muslim seems to have hardened into the figure of a permanent political division of the country. It is to be hoped that the Congress and the nation will not accept the settled fact as for ever settled or as anything more than a temporary expedient. For if it lasts, India may be seriously weakened, even crippled: civil strife may remain always possible, possible even a new invasion and foreign conquest. The partition of the country must go,—it is to be hoped by a slackening of tension, by a progressive understanding of the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

need of peace and concord, by the constant necessity of common and concerted action, even of an instrument of union for that purpose. In this way unity may come about under whatever form—the exact form may have a pragmatic but not a fundamental importance. But by whatever means, the division must and will go. For without it the destiny

INVOCATION

O our Mother, O Soul of India, Mother who hast never forsaken thy children even in the days of darkest depression, even when they turned away from thy voice, served other masters and denied thee, now when they have arisen and the light is on thy face in this dawn of thy liberation, in this great hour we salute thee. Guide us so that the horizon of freedom opening before us may be also a horizon of true greatness and of thy true life in the community of the nations. Guide us so that we may be always on the side of great ideals and show to men thy true visage, as a leader in the ways of the spirit and a friend and helper of all the peoples.

— *The Mother.*

15-8-47.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

domination of other peoples, but to live also for God and the world as a helper and leader of the whole human race. Those aims and ideals were in their natural order these: a revolution which would achieve India's freedom and her unity; the resurgence and liberation of Asia and her return to the great role which she had played in the progress of

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

need of peace and concord, by the constant necessity of common and concerted action, even of an instrument of union for that purpose. In this way unity may come about under whatever form—the exact form may have a pragmatic but not a fundamental importance. But by whatever means, the division must and will go. For without it the destiny of India might be seriously impaired and even frustrated. But that must not be.

Asia has arisen and large parts of it have been liberated or are at this moment being liberated; its other still subject parts are moving through whatever struggles towards freedom. Only a little has to be done and that will be done today or tomorrow. There India has her part to play and has begun to play it with an energy and ability which already indicate the measure of her possibilities and the place she can take in the council of the nations.

The unification of mankind is under way, though only in an imperfect initiative, organised but struggling against tremendous difficulties. But the momentum is there and, if the experience of history can be taken as a guide, it must inevitably increase until it conquers. Here too India has begun to play a prominent part and, if she can develop that larger statesmanship which is not limited by the present facts and immediate possibilities but looks into the future and brings it nearer, her presence may make all the difference between a slow and timid and a bold and swift development. A catastrophe may intervene and interrupt or destroy what is being done, but even then the final result is sure. For in any case the unification is a necessity in the course of Nature, an inevitable movement and its achievement can be safely foretold. Its necessity for the nations also is clear, for without it the freedom of the small peoples can never be safe hereafter and even large and powerful nations cannot really be secure. India, if she remains divided, will not herself be sure of her safety. It is therefore to the interest of all that union should take place. Only human imbecility and stupid selfishness could prevent it. Against that, it has

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

been said, even the gods strive in vain; but it cannot stand for ever against the necessity of Nature and the Divine Will. Nationalism will then have fulfilled itself; an international spirit and outlook must grow up and international forms and institutions; even it may be such developments as dual or multilateral citizenship and a voluntary fusion of cultures may appear in the process of the change and the spirit of nationalism losing its militancy may find these things perfectly compatible with the integrity of its own outlook. A new spirit of oneness will take hold of the human race.

The spiritual gift of India to the world has already begun. India's spirituality is entering Europe and America in an ever increasing measure. That movement will grow; amid the disasters of the time more and more eyes are turning towards her with hope and there is even an increasing resort not only to her teachings, but to her psychic and spiritual practice.

The rest is still a personal hope and an idea and ideal which has begun to take hold both in India and in the West on forward-looking minds. The difficulties in the way are more formidable than in any other field of endeavour, but difficulties were made to be overcome and if the Supreme Will is there, they will be overcome. Here too, if this evolution is to take place, since it must come through a growth of the spirit and the inner consciousness, the initiative can come from India and although the scope must be universal, the central movement may be hers.

Such is the content which I put into this date of India's liberation; whether or how far or how soon this connection will be fulfilled, depends upon this new and free India.

Sri Aurobindo

15th August, 1947

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे देव ! हे श्रीअरविन्द ! हे करुणामूर्त्ति ! हे सर्वविजयी ! आज के तुम्हारे इस दिव्य दिन पर हमारा भी नवयुग, दिव्य-युग आरम्भ हो जाय। हे प्रभो ! यही हमारी आज तुमसे प्रार्थना है।

हे देव ! हे श्रीअरविन्द ! आज तुम्हारा विजय-दिन है—दिव्य दिन है। मैं तुम्हें और तुम्हारी सुयश-पताका—विजय-ध्वजा को प्रणाम करता हूं।*

—जानकीप्रसाद साहू

---

* ... १५वीं अगस्त सन् १९४७ ईसवी ...लन के उपलक्ष में।

The Mother's Flag

A full-blown lotus in gold with two rows of petals (inside 4, outside 12) exactly in the centre of a square field of silvery blue. The ratio of the side of the square to the diameter of the lotus is 6 : 2·5.

It is the flag of India's spiritual mission. And in the accomplishment of this mission will India's unity be accomplished.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

been said, even the gods strive in vain; but it cannot stand for ever against the necessity of Nature and the Divine Will. Nationalism will then have fulfilled itself; an international spirit and outlook must grow up and international forms and institutions; even it may be such developments as dual or multilateral citizenship and a voluntary fusion of cultures may appear in the process of the change and the spirit of nationalism losing its militancy may find these things perfectly compatible with the integrity of its own outlook. A new spirit of oneness will take hold of the human race.

The spiritual gift of India to the world has already begun. India's spirituality is entering Europe and America in an ever increasing measure. That movement will grow; amid the disasters of the time more and more eyes are turning towards her with hope and there is even an increasing resort not only to her teachings, but to her psychic and spiritual practice.

The rest is still a personal hope and an idea and ideal which has begun to take hold both in India and in the West on forward-looking minds. The difficulties in the way are more formidable than in any other field of endeavour, but difficulties were made to be overcome and if the Supreme Will is there, they will be overcome. Here too, if this evolution is to take place, since it must come through a growth of the spirit and the inner consciousness, the initiative can come from India and although the scope must be universal, the central movement may be hers.

Such is the content which I put into this date of India's liberation; whether or how far or how soon this connection will be fulfilled, depends upon this new and free India.

Sri Aurobindo

15th August, 1947

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे देव! हे श्रीअरविन्द! हे करुणामूर्त्ति! हे सर्वविजयी! आज के तुम्हारे इस दिव्य दिन पर हमारा भी नवयुग, दिव्य-युग आरम्भ हो जाय। हे प्रभो! यही हमारी आज तुमसे प्रार्थना है।

हे देव! हे श्रीअरविन्द! आज तुम्हारा विजय-दिन है—दिव्य दिन है। मैं तुम्हें और तुम्हारी सुयश-पताका—विजय-ध्वजा को प्रणाम करता हूं।*

—जानकीप्रसाद साहू

१५वीं अगस्त सन् १९४७ ईसवी
लन के उपलक्ष में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

been said, even the gods strive in vain; but it cannot stand for ever against the necessity of Nature and the Divine Will. Nationalism will then have fulfilled itself; an international spirit and outlook must grow up and international forms and institutions; even it may be such developments as dual or multilateral citizenship and a voluntary fusion of cultures may appear in the process of the change and the spirit of nationalism losing its militancy may find these things perfectly compatible with the integrity of its own outlook.

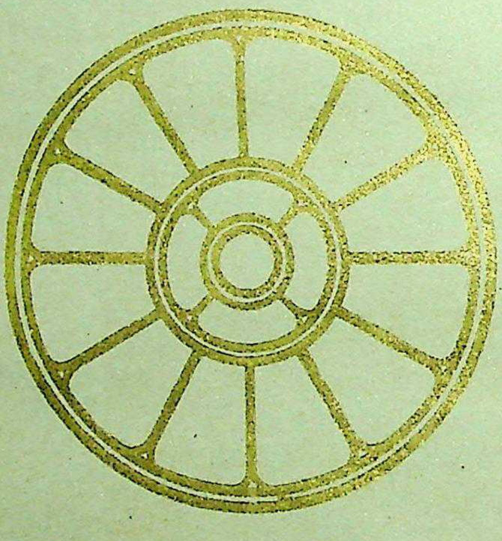

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे देव ! हे श्रीअरविन्द ! हे करुणामूर्त्ति ! हे सर्वविजयी ! आज के तुम्हारे इस दिव्य दिन पर हमारा भी नवयुग, दिव्य-युग आरम्भ हो जाय। हे प्रभो ! यही हमारी आज तुमसे प्रार्थना है।

हे देव ! हे श्रीअरविन्द ! आज तुम्हारा विजय-दिन है–दिव्य दिन है। मैं तुम्हें और तुम्हारी सुयश-पताका–विजय-ध्वजा को प्रणाम करता हूं।*

–जानकीप्रसाद साहू

...१५वीं अगस्त सन् १९४७ ईसवी ...लन के उपलक्ष में।

विजय-ध्वज :–

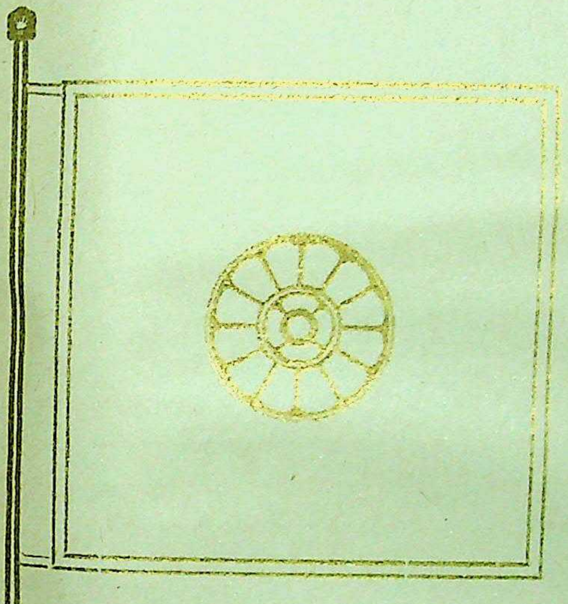

श्रीमातुर्ध्वजः

श्रीमदरविन्दजयन्तीमहोत्सवदिवसः

७५ अब्दपूर्तिः

१५ अगस्त १९४७

–

श्रीअरविन्दाश्रमः पाण्डिचेरी

...को छोड़ देते हैं। श्रीअरविन्द का ...प्रत्येक अंग को विकसित कर उसे ...पात्र बना देता है। शरीर के ...हर कहीं कोई सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग ..., जिसमें प्रभु का निवास न हो जाय। ...बड़ी विलक्षणता यह है कि इतने ...का तथा उनके मूल तत्त्वों का सम-... रूप से किया गया है कि हर एक ...क्त स्थान मिल गया है।

...योग में कुछ योगों के समावेश का

...का सार हम इतने विस्तृत रूप से ...यद वहांतक हठयोगियों की कभी ...नहीं पहुंची हो। शरीर और ...कार प्राप्त कर, उनके द्वारा भगवान् ... करना ही हठयोगियों का उद्देश्य है। उन्होंने अभीतक जो सिद्धियां प्राप्त की हैं उनका यही परिणाम हुआ है कि वे अपने जीवन को एक काल तक परिवर्धित कर सके हैं, पर इस योग में हठयोग के मुख्य अंग शरीर में भी, जो कि अचेतन है,

सिद्ध करने में अपनी सारी शक्ति लगा देता है। पर वह चित्त, मन, बुद्धि का विकास करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं करता। वेदान्ती पुरुष को ले लेते और शक्ति को छोड़ देते हैं और तान्त्रिक शक्ति को ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

been said, even the gods strive in vain; but it cannot stand for ever against the necessity of Nature and the Divine Will. Nationalism will then have fulfilled itself; an international spirit and outlook must grow up and international forms and institutions; even it may be such developments as dual or multilateral citizenship and a voluntary fusion of cultur[illegible]

spirit of

things p

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे देव ! हे श्रीअरविन्द ! हे करुणामूर्त्ति ! हे सर्वविजयी ! आज के तुम्हारे इस दिव्य दिन पर हमारा भी नवयुग, दिव्य-युग आरम्भ हो जाय। हे प्रभो ! यही हमारी आज तुमसे प्रार्थना है।

हे देव ! हे श्रीअरविन्द ! आज तुम्हारा विजय-दिन है–दिव्य दिन है। मैं तुम्हें और तुम्हारी सुयश-पताका–विजय-ध्वजा को प्रणाम करता हूं।*

–जानकीप्रसाद साहू

*श्रीअरविन्द के ७५वें साल की पूर्त्ति के दिन–उनके जन्मदिन–१५वीं अगस्त सन् १९४७ ईसवी के अवसर पर श्रीअरविन्दाश्रम पर श्री माताजी की ध्वजा के उत्तोलन के उपलक्ष में।

पूर्णयोग

१

पूर्णयोग का स्वरूप

श्रीअरविन्द के पूर्णयोग को एक लेख में लिखकर समझाना गागर में सागर भरने की चेष्टा करना है। पर यहां मैं उसके प्रधान अंगों पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा करूंगा। प्रथम मैं यह दिखाने का प्रयत्न करूंगा कि यह योग किस प्रकार सभी अंशों में पूर्ण है। श्रीअरविन्द ने प्रत्येक योग की साधना, पूर्ण रूप से उसमें प्रवेश कर, अपने जीवन में की है पर उन्हे ऐसा कोई योग नहीं मिला जो मनुष्य-जीवन के प्रत्येक अंग को पूर्ण रूप से विकसित कर सके। प्रायः प्रत्येक योग ने एक अंग पर जोर देकर उसको ही पूर्ण रूप से सिद्ध करने की चेष्टा की है और सब अंगों को केवल उसी एक भाव की पूर्त्ति के लिये छोड़ दिया है। अथवा दूसरे शब्दों में और सब अंगों को विकसित करने की न चेष्टा ही की जाती है न उन्हें अवसर ही दिया जाता है। उदाहरणार्थ, हठयोग शरीर और प्राण को शुद्ध और सिद्ध करने में अपनी सारी शक्ति लगा देता है। पर वह चित्त, मन, बुद्धि का विकास करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं करता। वेदान्ती पुरुष को ले लेते और शक्ति को छोड़ देते हैं और तान्त्रिक शक्ति को ले लेते और पुरुष को छोड़ देते हैं। श्रीअरविन्द का पूर्णयोग जीवन के प्रत्येक अंग को विकसित कर उसे प्रभु का उपयुक्त पात्र बना देता है। शरीर के अन्दर अथवा बाहर कहीं कोई सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग भी नहीं रह जाता, जिसमें प्रभु का निवास न हो जाय। इस योग की एक बड़ी विलक्षणता यह है कि इतने प्रकार के योगों का तथा उनके मूल तत्त्वों का समन्वय इस सुन्दर रूप से किया गया है कि हर एक को उसका उपयुक्त स्थान मिल गया है।

अब हम पूर्णयोग में कुछ योगों के समावेश का वर्णन करते हैं।

इसमें हठयोग का सार हम इतने विस्तृत रूप से पाते हैं कि शायद वहांतक हठयोगियों की कभी कल्पना भी नहीं पहुंची हो। शरीर और प्राण पर अधिकार प्राप्त कर, उनके द्वारा भगवान् का स्पर्श प्राप्त करना ही हठयोगियों का उद्देश्य है। उन्होंने अभीतक जो सिद्धियां प्राप्त की हैं उनका यही परिणाम हुआ है कि वे अपने जीवन को एक काल तक परिवर्धित कर सके हैं, पर इस योग में हठयोग के मुख्य अंग शरीर में भी, जो कि अचेतन है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवत चैतन्य का अवतरण कर उसे इस प्रकार रूपान्तरित कर दिया जाता है कि वह अजर और अमर हो जाय। मन-बुद्धि को दिव्य बनाना बहुत ही सहज है पर पत्थर के समान इस जड़ शरीर को भगवान् का बनाना और उसमें भगवान् के दिव्य चैतन्य को उतारकर नित्य रूप से निवास कराना कोई सहज बात नहीं है। विशेषता यह है कि पूर्णयोग के साधक को हठयोगी की भांति एक अत्यन्त कष्टकारी साधना में उतरना नहीं पड़ता न उसे विभिन्न आसनों को सिद्ध करने की आवश्यकता ही होती है। उसे तो केवल अन्तरात्मा की अभीप्सा के साथ शरीर का संयोग कर देना पड़ता है और इस प्रकार शरीर भी अपने जड़ स्वभाव को छोड़कर क्रमशः शुद्ध और उपयुक्त आधार बन जाता है।

राजयोगी यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के द्वारा मन को शान्त करके ऊपर उठता है और समाधि-अवस्था में वह शान्ति प्राप्त करता है जो उसे मुक्ति तक पहुंचाती है। ऐसे सिद्ध योगियों में भी प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब उनके अन्दर काम, क्रोध आदि विकार उठते हैं तब वे अपनी शान्ति खो बैठते हैं। राजयोगी नैतिकता पर बहुत जोर देते हैं; परन्तु पूर्णयोग के साधक उसमें उतना समय व्यय नहीं करते। इनकी प्रत्येक चेष्टा अपने अन्दर आध्यात्मिकता का विकास करने के लिये होती है। इनके सारे कर्मों का आरम्भ ही होता है आध्यात्मिकता से और आध्यात्मिकता के विकास के साथ-साथ नैतिकता स्वाभाविक रूप में अपने आप आ जाती है। जो आध्यात्मिकता को प्राप्त कर चुका है वह कभी दुःशील नहीं हो सकता। परन्तु नैतिकता के ऊपर आध्यात्मिकता निर्भर नहीं करती। मन की शान्ति, चित्त की स्थिरता, प्राण की एकाग्रता, हृदय की तन्मयता और शरीर की समस्त विकारों से निष्क्रृति ही पूर्णयोग की आधारभूमि है। ऐसा शान्तिमय निश्चल आधार ही इस योग के पूर्ण स्थायित्व के लिये आवश्यक माना गया है। यह शान्ति मन के भावों, भावनाओं, वासनाओं, चिन्ताओं और विचारों को कुचलकर नहीं प्राप्त की जाती, बल्कि साधना द्वारा क्रमशः ऐसी स्थिति स्वतः आ जाती है कि यह शान्ति साधक के स्वभाव का एक अंग बन जाती है। और ऐसे शुद्ध, शान्त, निश्चल और नीरव आधार पर ही ऊपर से भागवत आनन्द, प्रेम, ज्ञान का उतरना सहज हो सकता है और ये स्थायी रूप से टिक सकते हैं। इस प्रकार राजयोग का हम इसमें सुन्दर समावेश पाते हैं।

अब कर्मयोग को लीजिये। श्रीअरविन्द और किसी चीज पर इतना जोर नहीं देते जितना कर्मयोग पर देते हैं। वह कहते हैं कि यह संसार भगवान् का लीलाक्षेत्र है। वे इसके अणु अणु में विराज रहे हैं तथा उनकी इच्छा के विरुद्ध एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। कर्मयोग पर वे इतना जोर देते हैं कि यदि हम कहें कि कर्मक्षेत्र से भागकर कोई इस योग का योगी नहीं बन सकता तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी। श्रीअरविन्द का उद्देश्य जगत्त्याग, जीवन-त्याग तथा कर्मत्याग नहीं है बल्कि संसार में, मनुष्यजाति में, जीवन में, कर्म में भगवान् को पाना और प्रकट करना है। वासना और अहंकार ये दो ही अज्ञान की जबर्दस्त ग्रन्थियां हैं। वासना से मुक्त होकर, फलासक्ति से रहित होकर, अहंभाव से सर्वथा शून्य होकर, भगवान् का कार्य, भगवान् के हाथ का यन्त्र बनकर, एकमात्र भगवान् के लिये ही करना पूर्णयोग में कर्मयोग है। देशहित, जातिहित, लोकहित के कर्म ही आजकल निष्काम कर्म माने जाते हैं। पर जिसमें अहं और वासना से छूटने के लिये प्रयत्न न हो वह गीताकथित कर्मयोग नहीं कहा जा सकता। जो कर्म अहं से छूटने के लिये तथा एकमात्र भगवान् के लिये न किये गये हों वे न तो यज्ञरूप माने जा सकते हैं न ऐसे कर्म हमारी शुद्धि ही कर सकते हैं। पूर्णयोग में संसार के किसी भी कर्म को छोड़ने की आवश्यकता नहीं होती, पर जो कुछ करें उसका उद्देश्य होगा एकमात्र भगवान्। यदि कोई ठीक-ठीक भाव रखकर इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार निष्काम होकर केवल कर्म ही करता चला जाय तो एक कर्मयोग द्वारा ही वह आत्मचैतन्य को प्राप्त कर सकता है।

भक्ति ही भगवान् को विवश कर सकती है। भक्ति में ही यह सामर्थ्य है कि वह भगवान् को निकट से निकट खींच लावे। कहा है–Knowledge obeys, Bhakti compels–अर्थात् ज्ञान आज्ञापालन करता है, भक्ति बाध्य करती है। पूर्णयोग का साधक जीवन का प्रत्येक कार्य प्रसन्नतापूर्वक भगवान् का चिन्तन करता हुआ, भगवान् के लिये करता है। वह एक मुहूर्त्त के लिये भी भगवान् की स्मृति को अपनेसे दूर नहीं होने देता। इस प्रकार वह सब समय सब कुछ करता हुआ एकमात्र भगवान् की ही पूजा में सदैव रत रहता है। उसके लिये भगवान् के सिवाय और कोई वस्तु अपनी नहीं रह जाती। उसका संसार में रहना भी केवल भगवान् के लिये होता है। वह अपनी साधना को भी इस प्रकार वासना की बू से खाली कर देता है कि उसकी साधना का ध्येय अपने लिये निर्वाण या मुक्ति अथवा महान् शक्ति प्राप्त करना नहीं होता बल्कि अपने जीवन में एकमात्र भगवान् की इच्छा की पूर्त्ति होता है। उसका हृदय भगवान् से इतना भरा रहता है कि वह सदा-सर्वदा केवल उनका स्पर्श ही नहीं प्राप्त करता बल्कि उसका व्यक्तित्व भी भगवान् में ही लीन हो जाता है, उसकी जगह केवल भगवान् ही रह जाते हैं और उसके जीवन में वही सब कुछ उसे अपना यन्त्र बनाकर करते हैं। साधक सर्वदा उनके साथ अविच्छिन्न एकता का अनुभव करता है जो वैष्णवों के श्रेष्ठ लक्ष्य के भी परे की वस्तु है। इस तरह इस पूर्णयोग में भक्तियोग भी पूर्ण रूप से ओतप्रोत है।

पूर्णयोग में ज्ञानयोग का समावेश इस प्रकार हुआ है कि प्रथम हमें अन्तरात्मा को जागरित कर, उसे अज्ञान-सुषुप्ति से उठाकर सम्मुख लाने का जी-जान से प्रयत्न करना होता है। और ज्यों-ज्यों साधना द्वारा कामना-वासना आदि की ग्रन्थियां टूटती जायंगी त्यों-त्यों उसे विकसित होने का अवसर मिलता जायगा। ज्यों-ज्यों वह बाहर आता जायगा त्यों-त्यों उसके प्रकाश द्वारा बाधाएं हटती जायंगी और मन-प्राण पर वह अपना प्रभुत्व जमाने की ओर अग्रसर होता जायगा। इस प्रकार उसके हृदय-सिंहासन पर निम्न प्रकृति की जगह आत्मा का अविकार जम जायगा और तब वह धीरे-धीरे चैतन्य को प्राप्त करने लगेगा। मैं कहां हूं, मेरी साधना किस ओर चल रही है, कौन-सा कर्म भगवदनुकूल है, कौन-सा भगवान् द्वारा प्रेरित होकर आया है, किसे हटाना, किसे अपने अन्दर प्रवेश करने देना आदि बातें बताने में उसको प्रस्फुटित अन्तरात्मा बड़ी सहायता देती है। अन्त में यही अन्तरात्मा (Psychic being) उसे जीवात्मा से मिलाते हुए परमात्मा तक ले जाती है और फिर अपनी ऐकान्तिक अभीप्सा और पुकार के द्वारा अतिमानस (Supermind) के दिव्य ज्ञान और दिव्य शक्ति को नीचे उतारकर पृथ्वी-चैतन्य में प्रतिष्ठित करती है, जिसके बिना इस योग का परम ध्येय मानवीय प्रकृति का पूर्ण रूपान्तर संभव नहीं है। श्रीअरविन्द ने एक स्थान में कहा है कि यदि तुम मन-प्राण को काबू में ला सके हो, अनुभवों का भण्डार भर चुके हो, यहां-तक कि शारीरिक सिद्धियों के द्वारा लोगों को चकित करने में भी समर्थ हो चुके हो, पर यदि अन्तरात्मा को साधना का प्रधान अंग बनने का अवसर तुमने नहीं दिया तो वास्तव में महत्त्वपूर्ण कुछ भी नहीं हुआ। इसलिये इस योग में ज्ञान का अर्थ है, विश्वेश्वर की, जो व्यक्तिगत ईश्वर बनकर मनुष्य के हृदय में बैठे हैं, पूर्ण सत्ता को जीवन के प्रत्येक अंग में स्थापित करना।

अब इसमें तन्त्र का रूप देखिये। शक्ति तो श्रीअरविन्द के योग का मानो प्राण है। तान्त्रिक तन्त्र-मन्त्र की साधना के द्वारा शक्ति को जागरित करता है; परन्तु पूर्णयोग यह मानकर चलता है कि शक्ति प्रत्येक मनुष्य के ऊपर स्थित है और दयामयी जननी उसको शुद्ध तथा सिद्ध बनाकर प्रभु का एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर यन्त्र बनाना चाहती हैं। पर मनुष्य स्वयं उन्हें अवकाश नहीं देता कि वे उसे अन्धकूप से बाहर निकालें और इसीलिये इस योग की साधना में शक्ति सर्वप्रधान है तथा शक्ति की शरण होना इस योग का प्रधान अंग है। क्योंकि पूर्णयोग की दृष्टि में आत्मा या पुरुष है ईश्वर और प्रकृति है उनकी कार्य-कारिणी शक्ति। इस योग में अपनेको पूर्णतः माता के चरणों में समर्पित कर देना होता है और साधना का सारा भार उनके हाथों में सौंपकर साधक निश्चिन्त हो जाता है। अवश्य ही आरम्भ में कुछ व्यक्तिगत प्रयत्न की आवश्यकता होती है, पर जैसे-जैसे साधक साधना में अग्रसर होता जाता है, वैसे-वैसे माता का प्रसाद उसमें उतरने लगता है और तब साधना बड़ी सरल रीति से चलने लगती है। जिसे माता के चरणों में भक्ति नहीं हुई, जो अपने-को माता की कृपा प्राप्त करने के योग्य नहीं बना सका, माता के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार न हो सका, मातृप्रेम के रंग में रंगने में अपने-को समर्थ न बना सका, वह सुख से इस योग की यात्रा नहीं कर सकता तथा अपने बल पर प्रकृति की दुर्भेद्य माया को भेदकर उनकी दिव्य ज्योति की मन्दाकिनी को अपनी सत्ता के ऊपर प्रवाहित नहीं कर सकता। जिसे माता के चरणों में दृढ़ विश्वास और उनकी शक्ति पर पूर्ण निर्भरता हो गयी उसने मानो विजय-यात्रा का वरदान प्राप्त कर लिया। अब उसे केवल असीम धैर्य तथा उत्कट तत्परता और एका-ग्रता के साथ कभी तेज कभी धीमी चाल से रास्ता समाप्त करना है। भय और निराशा को उसे तनिक भी अपने पास फटकने नहीं देना चाहिये। जिसे माता के प्रसाद की एक कणिका भी प्राप्त हो चुकी उसके लिये संसार में ऐसी कौन सी बाधा है जिसे वह पार नहीं कर सकता ? माता हमारी मदद करने के लिये, हमारी पुकार सुनने के लिये, हमारे संकट में अपनी दिव्य झलक दिखाने के लिये सदा तैयार रहती हैं, आवश्यकता है केवल उनके चरणों को दृढ़ता के साथ पकड़ने की। जो उन्हें अपने हृदयमन्दिर में बैठाकर उनका पुजारी बन गया उसे एक दिन वह मानवीय स्तर से उठाकर दिव्य स्तर पर बैठा देंगी। (क्रमशः)

—नारायणप्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्गुरो !

मेरा भी एक स्वप्न था। सुन्दर और अद्भुत। सारी सृष्टि को मैं सौंदर्य से भरी हुई देखना चाहता था। हर कदम में किसी अद्भुत से मिलना चाहता था। किसी परम रूप के आश्लेष में निमज्जित हो जाना चाहता था। किसी अलौकिक सौन्दर्य को अपनी आंखों के सामने हर घड़ी रखना चाहता था, उसके रसमाधुर्य को दम-ब-दम पीते रहना चाहता था। जीवन को रसानन्द का एक महोत्सव बना देना चाहता था। मेरा भी एक स्वप्न था।

किन्तु जब मैंने आपका स्वप्न देखा, सच कहूं तो जब आपने अपना स्वप्न मेरे समक्ष रख दिया तब उसके आगे मेरा स्वप्न फीका पड़ गया। परम स्वप्नसेवी होने का मेरा अभिमान पिघल गया।

*

मेरी भी एक भावना थी। तेजस्वी और विशाल। इस दुखियारी पृथ्वी को अपनी गोद में मैं लेना चाहता था। इस दीन मानव-जीवन के आंसू को मैं पोंछना चाहता था। इस कंगाल मानवजाति की क्षुधा को मैं मिटा देना चाहता था। इस व्याकुल मानव-हृदय की तृषा को मैं छिपाना चाहता था। इस क्षुद्र जीवन की वन्ध्यता को मैं नवसर्जन से हरी-भरी कर देना चाहता था। मेरी भी एक भावना थी।

किन्तु जब मैंने आपकी भावना देखी, जब कि आपने अपने अन्तःकरण का एक छोटा सा ही कोना मेरे सामने खोलकर दिखलाया, मेरी भावना मुझे निस्तेज दीख पड़ी। परम भावुक होने का मेरा गर्व विगलित हो गया।

*

मेरी भी एक खोज थी। गहन और उत्तुंग। मैं ढूंढ़ता था एक ज्ञान की खान, शक्ति का शिव समुद्र, सत्य का महान् मेरु। जीवन का मूलतम आधार मैं खोज रहा था। समस्त अज्ञान को मिटानेवाला परम प्रकाश मैं ढूंढ़ता था। जीवन की सब दुर्बलता को शक्ति में पलटने का कीमिया मैं चाहता था। जीवन के परम शिखर पर चढ़ जाना चाहता था। जीवन की गहन गहराइयों को अपनी अंगुलियों से छूना चाहता था। जीवन का मुझे स्वामी बनना था, प्रभु बनना था। मेरी भी एक खोज थी।

किन्तु जब मैंने आपकी खोज देखी, जब कि आपने मुझे अपनी प्रयोगशाला में प्रवेश करने का सौभाग्य दिया, मेरी खोज मानो रुक सी गयी। परम उपासक होने का मेरा मोह टल गया।

*

भगवन्, आपके चरणों के पास मैं आ खड़ा हुआ और देखा तो अपना सब कुछ वहां मौजूद था। और वह भी कितने अधिक प्रमाण में!

मेरे स्वप्न की अपेक्षा आपका स्वप्न कितना अधिक मधुर, अधिक सुहावना था! मेरी भावना की अपेक्षा आपकी भावना कितनी बृहत्तर और दीप्तिमान् थी! मेरी खोज की अपेक्षा आपकी खोज कितनी अधिक गहन, अधिक उत्तुंग थी!

भगवन्, आपने अपने निमेष मात्र से मेरा बोझ हटा दिया। मेरे स्वप्न को, मेरी भावना को, मेरी खोज को आपने अपनेमें ले लिया। मुझे फूल सा हलका बना दिया।

और उस फूल के सामने, उस फूल के ऊपर, उस फूल के सर्वतः आप सूर्यसमान बने रहे, आप अपनी करुणामधुर किरणों को मेरी ओर बहाते रहे, मुझे विकसाते रहे, मुझे अपना आविर्भाव बनाते रहे।

सद्गुरो, आपने जो मुझसे लिया वह न और किसीने लिया, न और कोई ले सकता है। आपने मुझे जो दिया वह न और किसीने दिया, न और कोई दे सकता है।

—सुन्दरम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्य हो गुरुदेव, धन्य हो !

मैं कुछ तलाश करता हुआ आया। मैंने सोचा था, जो और कहीं नहीं मिला वह शायद तेरे पास मिल जाय। जीवन मुझे अंधेरा दिखायी देता था। मैं क्षुब्ध था, शंकित था।

मैंने एकान्त संध्या के समय तेरे घर की पांच बार परिक्रमा की और प्रार्थना की–हे अरविन्द, सुना है तू महान् योगी है, तू जीवन-रहस्य का धनी है, तू इस तुच्छ जीवन को भी रास्ते पर लगा।

मैंने प्रार्थना की और जैसे भी हुआ मेरा अन्दर ही अन्दर धीरज बंधा। मुझे विश्वास सा हुआ मानो मुझसे कोई कह रहा हो–अब तुझे प्रकाश मिलेगा।

धन्य हो गुरुदेव, धन्य हो !

२

मैं अत्यन्त निर्बल था, निःशक्त था। जितना कर्त्तव्य मैं जानता था, जिसके करने की मैं मन ही मन इच्छा भी करता था, वह भी मैं कर नहीं पाता था। मैं प्रत्यक्ष सत्य का भी पालन करने में सफल न होता। मैं अत्यन्त तुच्छ आसक्तियां भी न छोड़ पाता।

मैं अपने आपसे खिन्न हो जाता, रोष से भर जाता, निराश होकर उदासीन हो जाता।

पर हृदय बार बार कहता, यह निरुपाय और निःसहाय अवस्था नहीं। मैंने तुझसे शक्ति की प्रार्थना की। मैंने वेदनाभरी आवाज में कहा–यह भी क्या जीवन है कि मनुष्य जानते हुए भी ठीक बात को करने में फिर फिर असफल रहे, अपनी तुच्छ भूलों को जड़ता से दुहराता रहे। जैसे भी हुआ हृदय में कुछ साहस आया, उसे अन्दर ही अन्दर अपनेपर विश्वास हुआ, छोड़ने योग्य बातें छूटने लगीं, करने योग्य होने लगीं। मैं कृतार्थ हो गया।

धन्य हो गुरुदेव, धन्य हो !

३

मैं शुष्क बुद्धिवादी था। सत्य असत्य तथा योग्य अयोग्य के विचारों से मेरा सारा संसार रचित था। मैं विचित्र प्रकार के संकटों में पड़ जाता। मैं बार बार देखता था कि बात सत्य है परन्तु व्यवहार में वह सफल नहीं। लोग राग-द्वेष से प्रेरित होते थे, मैं उन्हें शुद्ध सत्य से प्रेरित हुआ चाहता था। मेरे मन का 'सत्य' सामान्य रुचियों के साथ समझौता कर ही न पाता। मेरा संकट बढ़ता ही गया।

मुझे तेरी शरण का भरोसा था। तेरे सामर्थ्य पर विश्वास था। मैं समझता था अब इस जीवन की एक एक कमी पूरी होती जायगी। मैं तेरे समृद्ध दरबार में आकर अब भिखारी नहीं रहूंगा।

एक चमत्कार हुआ। मुझे समूर्त्त प्रेम के दर्शन हुए। कितने ही समय तक संसार के सब दृश्य प्रेम से ही परिचालित दिखते रहे। सत्य असत्य और योग्य अयोग्य के बौद्धिक विचार लय से हो गये। सब कुछ प्रेममय और प्रेमपूर्ण दिखता। प्रेम. . . . प्रेम बस यही एक ध्वनि अनवरत रूप से चित्त में बस रही थी। मेरी चेतना मुझसे पहचानी न जाती। उसका मौलिक स्वरूप ही बदल गया। मैं चकित सा रह गया। मेरी कृतार्थता असीम थी।

धन्य हो गुरुदेव, धन्य हो !

—इन्द्रसेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मयोग

चतुर्थ अध्याय

यज्ञ, त्रिदल पथ और यज्ञ के अधीश्वर

यज्ञ के विधान का अभिप्राय है वह सार्वजनीन दिव्य कर्म जो इस संसार में आदिकाल में ही लोक-संग्रह के प्रतीक के तौर पर उत्पन्न किया गया। इस विधान के आकर्षण से ही एक दिव्यीकारक, रक्षा-कारक शक्ति अहम्मूलक और स्वतोविभाजित सृष्टि की भूलों को मर्यादित और संशोधित और शनैः शनैः उत्सारित करने के लिये अवतरित होती है। यह अवतरण, पुरुष का यह यज्ञ,–जिसमें दिव्य आत्मा अपने आपको शक्ति और जड़प्रकृति के अधीन कर देती है ताकि वह इन्हें अनुप्राणित और प्रकाशयुक्त कर सके,–निश्चेतना और अविद्या के इस संसार की रक्षा का बीज है। "कारण, यज्ञ को इन प्रजाओं का साथी बनाकर", गीता कहती है कि, "प्रजापति ने इन्हें उत्पन्न किया।" यज्ञ के विधान को स्वीकार करना अहं का इस बात को क्रियात्मक रूप से अंगीकार करना है कि इस संसार में न तो वह अकेला है और नाहीं वह इस संसार में मुख्य है। यह उसका इस बात को मानना है कि, इस अत्यन्त खण्डित सत्ता में भी, उसके परे और पीछे कोई ऐसी वस्तु है जो उसका अपना अहम्भावमय व्यक्तित्व नहीं है, कोई ऐसी वस्तु है जो उससे महत्तर और पूर्णतर है, कोई दिव्यतर विश्वमय सत्ता है जो इस अहं से दास्य और सेवा की मांग करती है।

परन्तु, बहुधा, यज्ञ अचेतन रूप से, अहम्भावपूर्वक और महान् सार्वभौम यज्ञ-क्रिया के सत्य अर्थ के ज्ञान या अंगीकार के बिना किया जाता है। पृथ्वी-तल के प्राणियों की बहुत ही बड़ी संख्या इसे इसी रूप में करती है; और, जब इसे इस प्रकार किया जाता है, तब व्यक्ति प्राकृतिक अवश्यम्भावी लाभ की यान्त्रिक न्यूनतम मात्रा को ही प्राप्त करता है, इसके द्वारा उस मन्द कृच्छ्र उन्नति को ही अधिगत करता है जो अहं की क्षुद्रता और यातना से सीमित और पीड़ित होती है। जब हृदय, इच्छाशक्ति और ज्ञानात्मक मन अपने आपको विधान के साथ संबद्ध कर लेते और इसका सहर्ष अनुसरण करते हैं केवल तभी दिव्य यज्ञ का गभीर हर्ष और मंगलमय फलप्राचुर्य उपलब्ध हो सकता है। इस विधान के संबन्ध में मन के ज्ञान तथा हृदय की प्रसन्नता की पराकाष्ठा इस अनुभव में होती है कि हम उत्सर्ग जो करते हैं वह अपनी ही आत्मा और आत्मतत्त्व तथा सबकी एकमेव आत्मा और आत्मतत्त्व के प्रति ही करते हैं। और यह बात तब भी सत्य होती है जब कि हमारी आत्माहुति अभी अपने साथी-प्राणियों या क्षुद्रतर शक्तियों और तत्त्वों के प्रति होती है तथा परम देव के प्रति नहीं होती। याज्ञ-वल्क्य उपनिषद् में कहते हैं "पत्नी हमें पत्नी के लिय नहीं बल्कि आत्मा के लिये प्यारी होती है।" इसे व्यष्टिगत अहं के निम्नतर अर्थ में लिया जाय तो भी यह एक ऐसा निर्विवाद सत्य है जो कि अहं-भावमूलक प्रेम के रञ्जित और आवेशयुक्त दावों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पीछे छिपा होता है; परन्तु उच्चतर अर्थ में यह उस प्रेम का भी आन्तरिक आशय है जो कि अहम्भाव-मय नहीं बल्कि दिव्य है। समस्त सच्चा प्रेम और समस्त यज्ञ, सारतः, प्रधान अहम्भाव और उसकी विभाजनात्मक भ्रान्ति का प्रकृति द्वारा किया गया विरोध ही है; यह आवश्यक प्रथम विभाजन से पुनर्लब्ध एकत्व की ओर अभिमुख होने का उसका प्रयत्न है। प्राणियों के बीच समस्त एकता सारतः आत्म-गवेषणा है, उसके साथ मिलन है जिससे हम पृथक् हो चुके हैं और दूसरोंमें अपनी आत्मा की उपलब्धि है।

संघभाव प्राणिक और भौतिक एकता है; इसका यज्ञ है पारस्परिक सहायता और रिआयतों का यज्ञ। निकटता, सहानुभूति, मेल-मिलाप मानसिक, नैतिक और भावुक एकता को जन्म देते हैं; उनका यज्ञ है पारस्परिक सहायता और पारस्परिक लाभ। परन्तु सच्ची एकता है आध्यात्मिक एकता; इसका यज्ञ है पारस्परिक आत्मदान, हमारी आन्तरिक सत्ता का परस्परसम्मिलन। यज्ञ का विधान विश्व-प्रकृति में इस पूर्ण और निःशेष आत्मदान-रूपी परा-काष्ठा की ओर गति करता है; यह इस चेतना को जागृत करता है कि यजनकर्त्ता और यज्ञ के ध्येय में एक ही सर्वनिष्ठ आत्मा है।

विश्वव्यापी विधान का यह गभीरतर विचार गीता की कर्मसंबन्धी शिक्षा का मर्म है; यज्ञ के द्वारा सर्वोच्च देव के साथ आध्यात्मिक मिलन, सनातन देव के प्रति निःशेष आत्मदान इसके सिद्धान्त का सार है। यज्ञ का असंस्कृत विचार है कष्टमय आत्म-बलिदान का कार्य, कठोर आत्म-पीड़न, कृच्छ्र आत्मोच्छेद; इस प्रकार का यज्ञ आत्म-पंगूकरण और आत्म-यातना की हद तक भी पहुंच सकता है। ये चीजें मनुष्य के अपने प्रकृतिगत 'अहं' को अति-क्रमण करने के कठिन प्रयास में कुछ समय के लिये आवश्यकीय हो सकती हैं; यदि मनुष्य की प्रकृति में अहम्भाव उग्र और आग्रहपूर्ण हो, तो कभी कभी तदनुरूप प्रबल आन्तरिक अवदमन और तुल्य उग्रता के द्वारा उसका मुकाबला करना होता है। परन्तु गीता अपने प्रति किसी मात्रा में भी अधिक उग्रता के प्रयोग को मना करती है; क्योंकि अन्तःस्थित आत्मा वास्तव में विकसित हो रहा परमेश्वर ही है, वह कृष्ण है, वह भगवान् है; इसे उस प्रकार पीड़ा और यन्त्रणा नहीं पहुंचानी है जिस प्रकार कि संसार के असुर इसे पीड़ा और यन्त्रणा पहुंचाते हैं, बल्कि इसे उत्तरोत्तर संवर्धित, पालित-पोषित और दिव्य प्रकाश और बल और हर्ष और विशालता की ओर ज्योतिर्मय रूप से उद्घाटित करना है। अपनी आत्मा को नहीं, बल्कि आत्मा के आन्तरिक रिपुओं के दल को हमें निरुत्साहित और निष्कासित करना है, तथा उन्हें आत्मोन्नति की वेदी पर बलि चढ़ाना है; इनका निर्दयतापूर्वक उच्छेद किया जा सकता है; इनके नाम ये हैं—काम, क्रोध, असमता, लोभ, बाह्य सुख-दुःखों के प्रति मोह, बलात् आक्रमणकारी दैत्यों का सैन्यदल जो कि आत्मा की भ्रान्तियों और दुःखों का कारण है। इन्हें अपना अंग नहीं बल्कि अपनी आत्मा की वास्तविक और दिव्य प्रकृति पर अनधिकार आक्रमण करनेवाले और उसे विपर्यस्त करनेवाले समझना चाहिये; बलि शब्द के कठोर-तर अर्थ के अनुसार इनकी बलि चढ़ा देनी है चाहे ये जाते समय प्रतिच्छाया द्वारा जिज्ञासु की चेतना पर कैसा भी दुःख क्यों न प्रतिक्षिप्त करें।

परन्तु यज्ञ का वास्तविक सार आत्म-बलिदान नहीं, वह है आत्मदान; उसका उद्देश्य आत्मोच्छेद नहीं, वरन् आत्मपरिपूर्णता; उसकी विधि आत्म-दमन नहीं, बल्कि महत्तर जीवन, आत्म-पंगूकरण नहीं, बल्कि अपने प्राकृतिक मानवीय अंगों का दिव्य अंगों में रूपान्तर, आत्म-यन्त्रणा नहीं वरन् क्षुद्रतर संतुष्टि से महत्तर आनन्द की ओर प्रयाण। केवल एक ही चीज है जो उपरितल की प्रकृति के अपरि-पक्व या कलुषित भाग के लिये प्रारम्भ में दुःखदायी होती है; वह है अनिवार्य अनुशासन जिसकी कि इससे मांग की जाती है, वह परित्याग जो अपूर्ण अहं के निमज्जन के लिये आवश्यक है; परन्तु उसके बदले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रुत और अतिगुरु प्रतिफल मिल सकता है—वह यह कि दूसरों में, सभी वस्तुओं में, विश्वव्यापी एकता में, विश्वातीत आत्मा और आत्म-तत्त्व की स्वतन्त्रता में, भगवान् के स्पर्श के हर्षोन्माद में वास्तविक महत्तर या चरम पूर्णता की उपलब्धि।

अन्त में, यज्ञ के पात्र (यजनीय) और यज्ञ की विधि का विचार करना है। यज्ञ दूसरी (अदिव्य) शक्तियों के अर्पण किया जा सकता है या यह दिव्य शक्तियों के अर्पण किया जा सकता है; यह विराट् विश्वमय देव के अर्पण किया जा सकता है अथवा यह विश्वातीत परमदेव के प्रति अर्पण किया जा सकता है। जो अर्घ्य चढ़ाया जाता है वह कोई भी रूप धारण कर सकता है—पत्र या पुष्प, प्याले भर पानी, मुट्ठी भर चावल, रोटी के टुकड़े के उत्सर्ग से लेकर उस सबका निवेदन जो कुछ कि हमारे पास है और उस सबका अर्पण जो कुछ कि हम हैं। चाहे कोई भी पात्र (यजनीय) हो, चाहे कोई भी हवि हो, पर जो हवि को ग्रहण करता और स्वीकार करता है वह तो परात्पर देव, वस्तुओं में विद्यमान सनातन देव ही होता है, यद्यपि तात्कालिक पात्र द्वारा वह हवि अस्वीकृत या उपेक्षित भी की जाय। क्योंकि परात्पर देव जो विश्व को अतिक्रान्त करता है, यहां भी, प्रच्छन्न रूप में ही सही, हममें और जगत् में और इसकी घटनाओं में विद्यमान है; सर्वज्ञ द्रष्टा और हमारे निखिल कर्मों के ग्रहणकर्त्ता और उनके गुप्त स्वामी के रूप में वह यहां विद्यमान है। एकमेव देव हमारे सब कार्यों, हमारे सब प्रयत्नों, हमारे पापों और स्खलनों और दुःखों और संघर्षों के अन्तिम परिणाम को निर्धारित करता है, चाहे हम इस बात से सचेतन हों या अचेतन, चाहे यह हमें ज्ञात और प्रत्यक्ष अनुभूत हो अथवा यह हमसे अज्ञात और प्रच्छन्न हो। सब कुछ उसके अगणित रूपों में उसकी ओर ही प्रेरित होता है और उन रूपों के द्वारा उस एक सर्वव्यापक सत्ता को अर्पित होता है। चाहे किसी भी रूप में और चाहे किसी भी भावना के साथ हम उसके पास पहुंचें, उसी रूप में और उसी भावना के साथ वह देव यज्ञ को ग्रहण करता है।

और कर्मों के यज्ञ का फल भी कर्म के अनुसार, कर्म का जो प्रयोजन है उसके अनुसार और प्रयोजन के पीछे जो भावना विद्यमान है उसके अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। परन्तु अन्य सभी यज्ञ एकाङ्गी, अहम्भावमय, मिश्रित, कालावच्छिन्न, अपूर्ण होते हैं,—ऊंची से ऊंची शक्तियों और तत्त्वों के प्रति अर्पित यज्ञों का भी ऐसा ही स्वरूप होता है; फल भी आंशिक, सीमित, कालावच्छिन्न, अपनी प्रतिक्रियाओं में मिश्रित, केवल तुच्छ या अवान्तर प्रयोजन की सिद्धि में समर्थ होता है। एकमात्र पूर्णतया स्वीकार्य यज्ञ तो है चरम और परम और नितान्त आत्म-दान,—यह है वह समर्पण जो आमने सामने, भक्ति और ज्ञान के साथ, स्वेच्छापूर्वक और निःसंकोच, उस एकमेव देव के प्रति किया जाता है जो देव कि एक साथ ही हमारी अन्तर्यामी आत्मा, चतुर्दिग्व्यापी उपादानभूत विश्वमय देव, अभिव्यक्ति मात्र से परे परम सद्वस्तु है और, गुप्त रूप से युगपत् ये तीनों ही चीजें है, सर्वत्र निगूढ़, अन्तर्यामी परात्परता है। क्योंकि जो आत्मा अपने आपको पूर्ण रूप से ईश्वर को दे देती है, उसे ही ईश्वर भी अपने आपको सर्वथा दे देता है। केवल वही व्यक्ति जो अपनी संपूर्ण प्रकृति को अर्पित कर देता है आत्मा को उपलब्ध करता है। केवल वही जो प्रत्येक वस्तु दे सकता है, सर्वत्र विश्वमय भगवान् का आस्वाद लेता है। केवल परम आत्म-उत्सर्ग ही परात्पर देव तक पहुंचता है। जो कुछ भी हम हैं उस सबका यज्ञ द्वारा उदात्तीकरण ही हमें इस योग्य बना सकता है कि हम सर्वोच्च देव को मूर्तिमान् प्रकट करें और यहां परात्पर आत्मा की अन्तर्यामी चेतना में निवास करें।

*

जो मांग हमसे की जाती है वह, संक्षेप में, यही है कि हम अपने संपूर्ण जीवन को सचेतन यज्ञ का रूप दे दें। हमें अपनी सत्ता के प्रत्येक पल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रत्येक गति को सनातन देव के प्रति सतत और भक्तिभावयुक्त आत्म-दान में परिणत करना है। अपने सब कर्मों को, छोटे से छोटे और अत्यन्त साधारण और तुच्छ कर्मों को तथा बड़े से बड़े और अत्यन्त असाधारण और श्रेष्ठ कर्मों को, सभीको एक समान, समर्पित कार्यों के रूप में करना होगा। हमारी व्यष्टिभावापन्न प्रकृति को एक ऐसी आन्तर तथा बाह्य गति की एकीभूत चेतना में निवास करना होगा जो कि हम से परतर और हमारे अहं से महत्तर किसी वस्तु के प्रति समर्पित है। यह कोई महत्त्व की बात नहीं कि हवि किस वस्तु की है और उसे हम किसकी भेंट चढ़ाते हैं पर भेंट-रूपी क्रिया के समय यह चेतना होनी चाहिये कि हम सब सत्ताओं में विद्यमान एकमेव दिव्य परम सत्ता के प्रति इसे भेंट कर रहे हैं। हमारे अत्यन्त साधारण और अति स्थूलतया भौतिक कार्यों को भी ऐसा उदात्तीकृत रूप धारण करना होगा; जब हम भोजन करें, हमें इस रूप में सचेतन होना चाहिये कि हम अपना भोजन अपने में विद्यमान उस दिव्य उपस्थिति के प्रति दे रहे हैं; अवश्य ही यह मन्दिर में पवित्र आहुति-रूप होना चाहिये और केवल शारीरिक आवश्यकता या शारीरिक भोग का भाव हमसे दूर हट जाना चाहिये। हमारे श्वास-प्रश्वास तक को, हमारी हृदय की धड़कन तक को भी हममें सचेतन बनाया जा सकता है और बनाना होगा, उन्हें विश्वव्यापी यज्ञ के जीवित-जागृत लय-ताल के रूप में अनुभव करना होगा।

यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के विचार और उसके प्रबल अभ्यास में तीन परिणाम अन्तर्निहित होने चाहियें जो कि हमारे आध्यात्मिक आदर्श के लिये केन्द्रीय महत्त्व रखते हैं। सर्वप्रथम, यह प्रत्यक्ष है कि, यद्यपि ऐसा अभ्यास बिना भक्ति के प्रारम्भ किया जा सकता है तथापि यह उच्चतम सम्भव भक्ति की ओर सीधा और अनिवार्य तौर पर ले जायगा; क्योंकि यह स्वभावतः गभीर होकर कल्पनीय पूर्णतम आराधना, अत्यन्त गभीर ईश्वर-प्रेम में परिणत होकर रहेगा। अवश्य ही इसके साथ सब वस्तुओं में भगवान् का वर्धमान अनुभव भी होगा, अपने समस्त विचार, इच्छाशक्ति और कर्म में और अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में भगवान् के साथ उत्तरोत्तर गहरा अन्तर्मिलन होगा, अपनी सारी की सारी सत्ता का भगवान् के प्रति अधिकाधिक द्रवित निवेदन होगा। कर्मयोग के ये फलितार्थ सर्वांगीण और निरपेक्ष भक्ति के असली सार से भी युक्त हैं। जो जिज्ञासु इन्हें जीवन्त जाग्रत् क्रिया के रूप में चरितार्थ करता है वह आत्म-भक्ति की असली भावना की स्थिर और प्रभावशाली प्रतिमूर्त्ति का अपनेमें निरन्तर निर्माण करता है, और इसमेंसे उस सर्वोच्च देव की—जिसे कि यह सेवा अर्पित की जाती है—अत्यन्त मग्न करनेवाली पूजा का उदय होना अनिवार्य ही है। उस दिव्य उपस्थिति के प्रति अनन्य प्रेम, जिसके साथ कि वह सदा अधिक घनिष्ठ समीपता अनुभव करता है, समर्पित कर्मी में क्रमशः प्रबल होता जाता है। और इसके साथ ही पैदा होता है या इसमें ही निहित होता है सार्वभौम प्रेम भी—विभागमूलक अल्पकालिक चञ्चल लोलुप भाव नहीं, बल्कि सुदृढ़ निःस्वार्थ प्रेम जो कि एकत्व का गभीरतर स्पंदन है—इन सब सत्ताओं, जीवित गोचर पदार्थों और प्राणियों के प्रति जो कि भगवान् के वासस्थान हैं। सभीमें जिज्ञासु अपनी आराधना और सेवा के एकमात्र भाजन के साथ मिलन अनुभव करने लगता है। कर्मों का मार्ग यज्ञ के इस पथ से चलकर भक्ति के मार्ग के साथ जा मिलता है; यह स्वयं एक ऐसी पूर्ण, ऐसी तन्मयकारी, ऐसी सर्वांगीण भक्ति हो सकता है जैसी कि वह गहरी से गहरी भक्ति जिसे कि हृदय की उमंग चाह सकती है अथवा मन का आवेश जिसकी कल्पना कर सकता है।

और फिर, इस योग की अभ्यासक्रिया एकमात्र केन्द्रीय मोक्षजनक ज्ञान के सतत आन्तरिक स्मरण की अपेक्षा रखती है, और उस ज्ञान का कर्मों में सतत सक्रिय बहिर्मुखीकरण उस स्मरण को तीव्र करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सहायक होता है। सबमें एक ही आत्मा है, एकमेव भगवान् ही सब कुछ है; सब भगवान् में हैं, सब भगवान् हैं और विश्व में भगवान् के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है,–यह विचार या यह श्रद्धा कर्मी की चेतना की संपूर्ण पृष्ठभूमिका रहती है तबतक जबतक कि यह उसका संपूर्ण सारतत्त्व नहीं बन जाती।

जो कुछ भी हम देखते और सुनते हैं, जो कुछ भी हम छूते और अनुभव करते हैं, जिस किसी भी चीज से हम सचेतन होते हैं उस सबको हमें वही वस्तु करके जानना और अनुभव करना होता है जिसकी कि हम पूजा और सेवा करते हैं; सभीको भगवान् की प्रतिमा के रूप में परिणत, उसके देवत्व के निवास-धाम के रूप में अनुभूत और नित्य सर्वव्यापकता से आच्छादित करना होता है।

अन्त में, इस यज्ञरूपी योग का अभ्यास हमें अपने मन और इच्छाशक्ति और कार्यों में से अहंकार के समस्त आन्तर अवलम्बनों का त्याग करने और इसके बीज, इसकी उपस्थिति, इसके प्रभाव को अपनी प्रकृति में से निकाल फेंकने के लिये बाधित करता है। सब कुछ भगवान् के लिये ही करना होगा; सब कुछ भगवान् की ओर ही अभिप्रेरित करना होगा। हमें अपनेलिये पृथक् सत्ता के रूप में कुछ भी नहीं करना होगा, दूसरोंके लिये भी चाहे वे पड़ोसी, मित्र, परिजन हों, या देश या मानवजाति हो या अन्य प्राणी हों केवल इस नाते से कुछ भी नहीं करना होगा कि वे हमारे निजी जीवन और विचार और भावतरंग के साथ सम्बद्ध हैं अथवा इसलिये कि अहं उनकी भलाई में अनुरागपूर्ण रुचि रखता है। कर्म तथा विचार के इस दृष्टिकोण से सभी काम और समस्त जीवन भगवान की अपनी विराट् वैश्व सत्ता के निःसीम मन्दिर में भगवान् की दैनिक सक्रिय आराधना और सेवा-रूप ही हो जाते हैं। जीवन उत्तरोत्तर सनातन देव का व्यक्ति में एक ऐसा यज्ञ बनता जाता है जो कि निरन्तर नित्य परात्परता के प्रति स्वतः अर्पित होता रहता है। यह सनातन विश्वगत आत्मा के क्षेत्र की विशाल यज्ञिय भूमि में अर्पित किया जाता है; और जो शक्ति इसे अर्पित करती है वह भी है नित्य शक्ति, सर्वव्यापिनी माता। अतएव यह मार्ग कर्मों द्वारा और कर्मगत भावना तथा ज्ञान द्वारा मिलन एवं अन्तःसंभाषण का मार्ग है–जो कर्म, भावना और ज्ञान उतने पूर्ण और सर्वांगीण होते हैं जितने कि ऐसे कोई भी कर्म जिनकी कि आशा हमारी ईश्वरा-भिमुख इच्छाशक्ति कर सकती है या जिन्हें कि हमारी आत्मा की शक्ति निष्पन्न कर सकती है।

*

भगवान्, सनातन पुरुष हमारे कर्मों के यज्ञ का अधीश्वर है और उसके साथ अपनी संपूर्ण सत्ता और चेतना में तथा इसे प्रकट करनेवाले करणों में मिलन यज्ञ का एकमात्र लक्ष्य है। परन्तु भगवान् तत्त्वतः अनन्त हैं और उनकी अभिव्यक्ति भी बहुल रूप से अनन्त है। यदि ऐसी ही बात है तो यह सम्भव नहीं कि सत्ता और प्रकृति में हमारी सच्ची सर्वांगीण पूर्णता किसी एक ही प्रकार के अनुभव से प्राप्त हो सके; इसे दिव्य अनुभव की अनेक विभिन्न लड़ियों को मिलाना होगा। इस पूर्णता को इस प्रकार प्राप्त नहीं किया जा सकता कि तादात्म्य की किसी एक ही दिशा का एकांगी अनुसरण करके उसे उसकी चरम सीमा तक पहुंचा दिया जाय; इसे अनन्त के अनेक पार्श्वों को सामञ्जस्ययुक्त करना होगा। हमारी प्रकृति के पूर्ण रूपान्तर के लिये बहुरूप शक्तिमय अनुभव से युक्त समग्र चेतना की अनिवार्य आवश्यकता है।

इस अनन्त के किसी भी समग्र ज्ञान या बहुमुखी अनुभव के लिये एक आधारभूत बोध की अपरिहार्य आवश्यकता है। वह यह कि भगवान् को उसके उस सारभूत आत्मत्व और सत्य के रूप में अनुभव करना जिसमें कि आकृतियों या गोचर पदार्थों से कुछ अन्तर नहीं पड़ता। अन्यथा सम्भव है कि हम आकृतियों के जाल में फंसे रहें अथवा विश्वगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या विशेष रूपों के विशृंखल बाहुल्य में अव्यवस्थित रूप से भटकते रहें, और यदि हम इस गड़बड़ से बचे भी तो इसके बदले में हमें किसी मानसिक सूत्र से बद्ध होना या सीमित व्यक्तिगत अनुभव के दायरे में बन्द होना पड़ेगा। यहां सभी सत्ताओं में इस आत्मा और आत्म-तत्त्व को मानसिक विचार द्वारा ग्रहण करना ही नहीं बल्कि इसे देखना, अनुभव करना, इन्द्रियों द्वारा जानना, इसके साथ प्रत्येक प्रकार से संस्पर्श प्राप्त करना और सभी सत्ताओं को इस आत्मा और आत्मतत्त्व में वैसी ही सुस्पष्टता के साथ अनुभव करना—यह एक आधारभूत अनुभव है जिसके इर्दगिर्द अन्य समस्त ज्ञान को केन्द्रित होना होगा।

तथापि इस आधारभूत अनुभव का प्रारम्भ भिन्न भिन्न प्रकृति के व्यक्तियों के लिये भिन्न भिन्न प्रकार से होगा और उस संपूर्ण सत्य के विकसित होने में बहुत समय लगेगा जो कि इसके सहस्रों पहलुओं में छिपा हुआ है। शाश्वत उपस्थिति को पहले पहल मैं अपने में या अपनी आत्मा के तौर पर संभवतः देखता हूं अथवा अनुभव करता हूं; और बाद में ही अपनी इस महत्तर आत्मा के दर्शन और अनुभव को प्राणी मात्र तक विस्तारित कर सकता हूं। तब मैं संसार को अपनेमें या अपने साथ एकीभूत देखता हूं। परन्तु ज्यों ही यह आत्मा दिखायी देती है त्यों ही यदि संकुचित करणात्मक अहं इसमें विलीन नहीं होने लगता है, यदि क्षुद्रतर बाह्य मनोनिर्मित 'मैं' उस महत्तर स्थिर अजन्मा आध्यात्मिक 'मैं' में विलुप्त हो जाने से इन्कार करता है, तो मेरा अनुभव या तो विशुद्ध नहीं है या वह मूलतः त्रुटिपूर्ण है। मुझमें कहींपर अहम्भावमूलक बाधा है; मेरी प्रकृति के किसी भाग ने स्वार्थैकदृष्टि और स्वार्थसंरक्षी इन्कार को आत्मा के सर्वग्रासी सत्य के विरोध में खड़ा कर दिया है।

दूसरी तरफ—और कुछ लोगों के लिये यह अधिक सुगम तरीका है—मैं भगवान् को पहले अपनेसे बाहर जगत् में, अपनेमें नहीं बल्कि दूसरोंमें देख सकता हूं। वहां मैं प्रारम्भ से ही उस अन्तरवासी और सर्वसमावेशी अनन्त के रूप में इसके साथ समागम करता हूं जो इन सब आकृतियों, प्राणियों और शक्तियों से बंधा हुआ नहीं है जिन्हें कि यह अपने उपरितल पर धारण किये है। या फिर मैं इसे उस शुद्ध एकाकी आत्मा और आत्मतत्त्व के रूप में देखता और अनुभव करता हूं जो इन सब शक्तियों और सत्ताओं को अपने अन्दर रखता है, और मैं अपनी अहंबुद्धि को अपने चारों ओर की निश्चल-नीरव सर्वव्यापकता में विलीन कर देता हूं। बाद में यही मेरी करणात्मक सत्ता को व्याप्त और अधिकृत करने लगती है और इसीमेंसे ही निकलती प्रतीत होती हैं कर्मसंबन्धी मेरी सभी प्रेरणाएं, विचार और वाणी का मेरा सब प्रकाश, मेरी चेतना की समस्त रचनाएं और इस एकमेव विश्व-विस्तृत सत्ता के अन्य आत्मरूपों के साथ मेरी चेतना के सभी संबन्ध और संघट्ट। मैं अब पहले की तरह यह क्षुद्र व्यक्तिगत स्व नहीं हूं वरन् 'तत्' हूं जिसने अपना कुछ अंश अग्रभाग में कर रखा है और यह अंश विश्व में उस (तत्) की क्रियाओं के विशेष रूप का संधारण करता है।

एक और आधारभूत अनुभव है, जो सबसे परले सिरे का है और फिर भी जो कभी कभी प्रथम निर्णयिक उद्घाटन या योग के प्रारम्भिक दिक्परिवर्तन के रूप में प्राप्त होता है। वह है उस सत्ता के प्रति जागरण जो मेरे ऊपर और इस संसार के ऊपर अनिर्वचनीय उच्च परात्पर अविज्ञेय है जिसमें कि मैं निवास करता प्रतीत होता हूं, एक कालातीत और देशातीत अवस्था या सत्ता है जो साथ ही, मेरे अन्दर की तात्त्विक चेतना के लिये एक बलपूर्ण और विश्वासजनक तरीके से, एकमात्र ऐसी वस्तु है जो अप्रतिरोध्य तौर पर सत्य है। प्रायः इस अनुभव के साथ एक इसीके समान प्रबल बोध होता है या तो यहांकी सब वस्तुओं की स्वप्नसदृश वा छायामय भ्रमात्मकता का अथवा उनके अस्थायी, गौण और केवल अर्द्धवास्तविक स्वरूप का। कम से कम कुछ समय के लिये मेरे चारों ओर का सब दृश्य जगत् ऐसा दिखायी दे सकता है कि यह चलचित्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुल्य छाया-रूपों या उपरितलीय आकारों का परिभ्रमण है और मेरा अपना कर्म ऐसा मालूम हो सकता है कि यह मेरे ऊपर या बाहर के किसी अबतक अगृहीत और संभवतः अनधिगम्य स्रोत से निकली तरल रचना है। इस चेतना में रहने, इस प्रवेशात्मक अनुभव को विकसित करने अथवा वस्तुओं के स्वरूप के इस प्रथम संकेत का अनुसरण करने का अर्थ होगा स्व और जगत् के अज्ञेय में लय-रूपी लक्ष्य की ओर अग्रसर होना अर्थात् मोक्ष, निर्वाण। किन्तु परिणति की यही एक दिशा नहीं हो सकती। इस के विपरीत, मेरे लिये यह संभव है कि मैं तबतक प्रतीक्षा करूं जबतक कि इस कालातीत रिक्त मोक्ष की निश्चल-नीरवता के द्वारा मैं अपने आपके और अपने कार्यों के उस अबतक अगृहीत स्रोत के साथ संबन्ध प्राप्त न कर लूं; तब रिक्तता भरने लगती है, इसमेंसे उदित होता है अथवा इसके अन्दर प्रवाहित होता है भगवान् का सकल बहुविध सत्य, क्रियाशील अनन्त सत्ता के अशेष रूप और अभिव्यक्तियां और अनेक स्तर। यह अनुभव पहले तो मन पर और फिर हमारी सारी सत्ता पर चरम, अथाह, लगभग अतल शान्ति और निश्चल-नीरवता को प्रबलतया स्थापित करता है। अभिभूत, वशीकृत, स्तब्ध, अपने आपसे निर्मुक्त होकर, मन स्वयं निश्चल-नीरवता को परात्पर के रूप में स्वीकार कर लेता है। परन्तु पीछे जिज्ञासु को पता चलता है कि उसके लिये सब कुछ अन्तर्निहित या नव-निर्मित रूप में उस निश्चल-नीरवता में विद्यमान है अथवा सब कुछ महत्तर निगूढ़ परात्पर सत्ता से निश्चलनीरवता में से होकर जिज्ञासु पर अवतरित होता है। क्योंकि यह परात्पर, यह निरपेक्ष सत्ता अलक्षण शून्यता की शान्ति मात्र नहीं है; इसके अपने ही अमित आधेय और ऐश्वर्य हैं जिनके कि हीन और न्यून मूल्य हैं हमारे आधेय और ऐश्वर्य। यदि सब वस्तुओं का वह स्रोत न होता तो विश्व बन ही नहीं सकता था; सब शक्तियां, सब कर्म और क्रियाएं भ्रम-रूप होतीं, सृष्टि और अभिव्यक्ति मात्र असंभव होती।

अन्य अनुभव भी हैं जिनकी कि निश्चय ही आवश्यकता है और जिनका अनुसंधान उनकी संभाव्यताओं के परले छोर तक करना होगा; और यदि उनमें से कुछेक प्रथम दृष्टिपात में ऐसे प्रतीत होते हैं कि वे केवल उन भागवत रूपों को समाविष्ट करते हैं जो सत्ता की क्रियाशीलता के लिये यन्त्रस्वरूप हैं किन्तु उसके सारतत्त्व में अन्तर्निहित नहीं हैं, तथापि, जब हम उनका अनुसरण अन्त तक करते हैं अर्थात् क्रियाशीलता में से होते हुए उसके सनातन स्रोत पर पहुंचते हैं, तो हमें पता चलता है कि वे भगवान् के उस रूप का प्रकाश करते हैं जिसके बिना वस्तुओं के मूल में विद्यमान सत्य का हमारा ज्ञान असमृद्ध और अपूर्ण रहता। ये देखने में यन्त्रात्मक सत्ताएं उस रहस्य की कुंजी हैं जिसके बिना स्वयं मूलभूत तत्त्व भी अपने संपूर्ण गुह्यार्थ को प्रकाशित नहीं करते। भगवान् का प्रकाश करनेवाले सभी रूपों को पूर्णयोग के विशाल जाल में पकड़ना होगा।

*

यदि संसार और उसके कर्मों से पलायन, परम मोक्ष और शम ही जिज्ञासु का एकमात्र ध्येय होता, तो तीन महान् आधारभूत अनुभव उसके आध्यात्मिक जीवन की कृतार्थता के लिये पर्याप्त होते। केवल उन्हींमें एकाग्र होकर वह अन्य समस्त दिव्य या लौकिक ज्ञान को अपनेसे दूर हट जाने देता और स्वयं भारमुक्त होकर शाश्वत प्रशान्ति की ओर प्रयाण करता। परन्तु उसे संसार और इसके कर्मों को भी अपने ध्यान में रखना है, इनके मूल में जो दिव्य सत्य हो सकता है उसे जानना और दिव्य सत्य तथा व्यक्त सृष्टि के बीच प्रतीयमान उस विरोध का समाधान करना है जो अधिकांश आध्यात्मिक अनुभव का श्रीगणेश होता है।

वह सदा शान्ति या आनन्द की समाधि में ही नहीं रहता और, यदि वह रहे भी, तो भी यह कोई हल नहीं होगा, क्योंकि वह जानता है कि यह अविद्यामय जगत् तब भी उससे बाहर अथच उस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की किसी विस्तीर्णतर आत्मा के भीतर मानो सदा के लिये चल ही रहा होगा। कभी कभी उसकी आत्मा की ये दो अवस्थाएं ऐसी प्रतीत होती हैं कि वे उसकी चेतना की स्थिति के अनुसार उसके लिये बारी बारी से अस्तित्व रखती हैं; और समय समय पर वे उसकी सत्ता के ऐसे दो अवयवों, दो अर्द्धों, ऊर्ध्व और निम्न या आन्तर और बाह्य अर्द्धों के रूप में विद्यमान होती हैं जो बेमेल हैं और जिनमें मेल बैठाना है। उसे शीघ्र हीं मालूम हो जाता है कि उसकी चेतना के इस पार्थक्य में बड़ी भारी मोक्ष-जनक शक्ति है, क्योंकि इसके कारण वह अब अविद्या, निश्चेतना से पूर्ववत् बद्ध नहीं रहता।

यह एक वर्धमान आध्यात्मिक अनुभव का प्रारंभ है जो उसके समक्ष इस बात को अधिकाधिक प्रकट कर देता है कि जो चीज उसे पहले अन्धकारमय अगम माया करके प्रतीत होती थी वह तब भी सनातन पुरुष की उस चिच्छक्ति से भिन्न और कुछ भी नहीं थी जो कि विश्व से परे कालातीत और असीम है, पर यहां उज्ज्वल और धूसर विरोधी तत्त्वों का जामा पहनकर मन और प्राण और जड़ में भगवान् की शनैः शनैः अभिव्यक्ति के चमत्कार के लिये सर्वत्र फैली हुई है। वह अब अपनेको केवल ऐसा ही अनुभव नहीं करता है कि वह अपने आत्म-तत्त्व में सनातन पुरुष का अंश है, अपनी तात्त्विक आत्मा और आत्मतत्त्व में सनातन पुरुष के साथ पूर्णतया एकीभूत है, अपितु यह भी कि वह अपनी सक्रिय प्रकृति में उसकी सर्वज्ञानमयी और सर्वशक्तिमयी चिच्छक्ति का यन्त्र है। उस सनातन देव की इस (जिज्ञासु) के अन्दर वर्तमान लीला चाहे कितनी भी सीमित और सापेक्ष क्यों न हो तथापि जिज्ञासु उस देव की अधिकाधिक विस्तृत चेतना और शक्ति की ओर उद्घाटित हो सकता है और इस विस्तार की कोई भी निर्धारणीय सीमा नहीं प्रतीत होती। ब्रह्म-माया का द्वैत जो एक समय विरोधमय प्रतीत होता था पर अब द्विदल (द्वैक या द्वयात्मक एक) है—उसका रहस्य जिज्ञासु के समक्ष इस रूप में आविष्कृत होता है कि वह (द्वैत) सब आत्माओं के परम आत्मा, सत्ता के स्वामी, संसार-यज्ञ के और उसके यज्ञ के अधीश्वर का प्रथम महान् क्रियाशील रूप है।

भगवत्प्राप्ति की एक और दिशा में एक दूसरा द्वैत जिज्ञासु के अनुभव के विषय के रूप में उपस्थित होता है। एक तरफ तो वह उस साक्षी-चेतना को जान पाता है जो कि ग्रहण, निरीक्षण, अनुभव करनेवाली चेतना है, जो कर्म करती नहीं प्रतीत होती किन्तु जिसके लिये ये सब हमारे भीतर और बाहर के कर्म प्रारम्भ किये जाते और जारी रखे जाते प्रतीत होते हैं। उसके साथ ही, दूसरी तरफ वह एक कर्त्री-शक्ति या कार्यप्रक्रिया की शक्ति से सचेतन होता है जो इन सब चिन्त्य क्रियाओं को निर्मित, प्रेरित और परिचालित करती और गोचर एवं अगोचर अगणित पदार्थों को उत्पन्न करती तथा अपनी क्रिया और सृष्टि के अविरत प्रवाह के स्थिर आधारों के तौर पर उनका प्रयोग करती दिखायी देती है। सत्ता की ये दो भिन्न और विरोधी अवस्थाएं उसमें बारी बारी से आती हैं अथवा युगपत् एक दूसरे के आमने सामने आ उपस्थित होती हैं; एक तो आन्तर सत्ता में प्रशान्त रहकर निरीक्षण करती है किन्तु अचलायमान रहती और (प्रकृति की क्रिया में) भाग नहीं लेती है; दूसरी किसी बाह्य या उपरितलवर्ती आत्मा में सक्रिय रहती हुई अपनी अभ्यस्त गतियों को जारी रखती है। उसने पुरुष-प्रकृति के महान् द्वैत के तीव्र पृथक्कारक अनुभव में प्रवेश पा लिया है।

परन्तु जैसे जैसे चेतना गभीर होती है, वैसे वैसे वह इस बात से सचेतन होता जाता है कि यह केवल प्रारम्भिक पुरोभागस्थ प्रतीति है। क्योंकि उसे विदित हो जाता है कि उसकी अन्तःस्थित इस साक्षी आत्मा के निश्चल-नीरव आधार पर से, इसकी स्वीकृति या अनुमति से ही यह कार्यवाहिका प्रकृति उसकी सत्ता पर घनिष्ठतापूर्वक या दृढ़तापूर्वक कार्य कर सकती है; यदि आत्मा अपनी अनुमति को वापिस ले ले, तो प्रकृति की गतियां पूर्णतः यान्त्रिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनरावृत्ति-रूप रह जाती हैं जो प्रारंभ में जबर्दस्त होती हैं मानो अब भी अपने अधिकार को बलात् स्थापित करने का यत्न कर रही हों, पर पीछे न्यूनातिन्यूनतर क्रियाशील और वास्तविक हो जाती हैं। यह द्वैत, पक्षतः भिन्न होने पर भी, अभेद्य है। जहां जहां प्रकृति है, वहां वहां पुरुष है; जहां जहां पुरुष है, वहां वहां प्रकृति है। यहां भी वह यह देखता है कि भेदात्मक रूप मोक्षजनक है; क्योंकि यह अविद्या में विश्वप्रकृति की दोषपूर्ण क्रियाओं के साथ तादात्म्य-रूपी बन्धन से उसे मुक्त कर देता है। एकीकारक रूप शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक है; क्योंकि यह उसे प्रभुत्व और पूर्णत्व को प्राप्त करने का सामर्थ्य देता है। इस प्रकार पुरुष-प्रकृति का यह एक समय भेदयुक्त पर अब द्विदल (द्वयात्मक) द्वैत उसके समक्ष अपने अशेष सत्य-सहित इस रूप में प्रकाशित हो जाता है कि यह सब आत्माओं के आत्मा, सत्ता के स्वामी, यज्ञ के ईश्वर का द्वितीय महान् यन्त्रात्मक और कार्यसाधक रूप है।

भगवत्प्राप्ति की इनसे भिन्न एक तीसरी दिशा में जिज्ञासु के सामने एक और इनसे मिलता-जुलता पर पक्षतः विभिन्न द्वैत उपस्थित होता है जिसमें द्विदलात्मक (द्वयात्मक) स्वरूप अधिक शीघ्रतया प्रत्यक्ष होता है,—वह है ईश्वर और शक्ति का क्रियाशील द्वैत। एक तरफ तो जिज्ञासु उस अनन्त और स्वयंभू देवाधिदेव के, जो कि सब वस्तुओं को सत्ता की अनिर्वचनीय शक्तिगर्भता में धारण करता है, सत्तात्मक स्वरूप से सज्ञान होता है। दूसरी तरफ वह उसी देवाधिदेव से उसके क्रियानिष्पादिका चेतना और शक्तिवाले रूप में सचेतन होता है; उस चेतना और शक्ति से जो कि ऐसी आत्म-सचेतन शक्ति के तौर पर प्रकट की गयी है जो अपने भीतर सब कुछ धारण और वहन करती है और उस सबको विश्वगत काल और देश में अभिव्यक्त करने के लिये नियुक्त है। इस तथ्य के बल पर कि दिव्य परम रहस्य के दो महान् तत्त्व, सगुण और निर्गुण, यहां परस्पर एकीभूत हैं, सर्वांगीण सत्य का अन्वेषक ईश्वर और शक्ति के द्वैत में अपने आपको दिव्य परात्परता और अभिव्यक्ति के अधिक अन्तरीय और चरम रहस्य के निकट अनुभव करता है उस रहस्य की अपेक्षा जो कि किसी अन्य अनुभव से उसके सामने प्रस्तुत होता है।

क्योंकि ईश्वरी शक्ति, भागवती चिच्छक्ति और जगज्जननी, सनातन 'एक' और व्यक्त 'बहु' के बीच मध्यस्था बनती है। एक तरफ तो वह एकमेव से लायी हुई शक्तियों की क्रीड़ा द्वारा, अपने व्यक्तीकारक तत्त्व में उस 'एक' की अनन्त आकृतियों को तिरोभूत रखती और उसीमेंसे उन्हें आविर्भूत करती हुई, विश्व में बहुगुणित भगवान् को प्रकट करती है; दूसरी तरफ उन्हीं शक्तियों की पुनरारोहणकारिणी धारा से वह सब वस्तुओं को उस 'तत्' में जिससे कि वे निर्गत हुई हैं वापिस ले जाती है इसलिये कि आत्मा अपनी विकासशील अभिव्यक्ति में वहां भगवान् की ओर अधिकाधिक लौट सके अथवा यहां अपने दिव्य स्वरूप को धारण कर सके।

इस द्वैत में भी भेदात्मक अनुभव संभव है। इसके एक सिरे पर जिज्ञासु केवल सत्ता के उस स्वामी से सचेतन हो सकता है जो जिज्ञासु को मुक्त और दिव्य बनाने के लिये अपने ज्ञान, शक्ति और आनन्द के सामर्थ्यों को उसमें बलपूर्वक डाल रहा है; शक्ति उसे (जिज्ञासु) को इन ज्ञान आदि का द्योतक निर्व्यक्तिक बल या ईश्वर का गुण मात्र करके प्रतीत हो सकती है। दूसरे सिरे पर वह विश्व की स्रष्ट्री उस जगज्जननी से मिलन प्राप्त कर सकता है जो अपने आत्म-तत्त्व में से देवताओं और लोकों और सब पदार्थों और सत्ताओं को समुद्भूत करती है।

जब द्वैत के दोनों पार्श्वों का पूर्ण मिलन साधित हो जाता और उसकी चेतना पर अधिकार कर लेता है केवल तभी जिज्ञासु उस पूर्णतर शक्ति के प्रति उद्घाटित होने लगता है जो शक्ति कि उसे यहांके विचारों और बलों के अस्तव्यस्त संघर्ष से सर्वथा बाहर निकालकर उच्चतर सत्य में ले जायगी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अविद्यामय जगत् को प्रकाशयुक्त और मुक्त करने तथा इसपर सर्वोत्कृष्ट प्रभाव डालने के लिये उस सत्य के अवतरण को संभव बनायगी।

प्रत्यक्षतः-निर्व्यक्तिक विश्व में व्यक्तित्व की उपस्थिति के रहस्य के पीछे–वैसे ही जैसे कि अचित् में से प्रकट होनेवाली चेतना, प्राणहीन में से प्राण, जड़प्रकृति में से आत्मा के रहस्य में–सत्ता की पहेली का हल छिपा हुआ है। यहां फिर एक और क्रियाशील द्वैत है जो प्रथम दृष्टि में जैसा दिखायी देता है उससे अधिक व्यापक है और शनैः-शनैः-आत्म-प्रकाशकारिणी शक्ति की लीला के लिये अतीव आवश्यक है।

एक ही सत्ता के दो सिरों से दिखायी देनेवाला यह दृश्यगत अत्यन्त विरोध पूर्णयोग के जिज्ञासु के सामने कोई मूलभूत कठिनाई नहीं पैदा करता; क्योंकि उसके संपूर्ण अनुभव ने उसे यह दिखा दिया है कि इन युगलरूप अवस्थाओं की और इनकी शक्तियों की परस्परसंबद्ध ऋणात्मक तथा योगात्मक धाराओं की इसलिये आवश्यकता है कि एकमेव सत्ता के भीतर जो कुछ है उसकी अभिव्यक्ति हो सके। स्वयं उसके लिये व्यक्तित्व और निर्व्यक्तित्व उसके आध्यात्मिक आरोहण के निमित्त दो पंख रहे हैं और उसे यह भाविदृष्टि प्राप्त है कि वह एक ऐसी चोटी पर पहुंचेगा जहां उनकी साहाय्यप्रद परस्पर-क्रिया उनकी शक्तियों के सम्मिलन का रूप ले लेगी और अखंड सद्वस्तु को आविर्भूत करेगी और भगवान् की आद्या शक्ति को क्रिया-प्रवृत्त कर देगी।

जिस चीज की हम खोज कर रहे हैं वह है पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शक्ति, सत्ता के मूल में विद्यमान 'सर्व' और अनन्त के साथ मिलन का अशेष प्राचुर्य। पूर्णयोग के जिज्ञासु के लिये कोई भी एक अनुभव, कोई भी एक भागवत रूप, सनातन देव के व्यावर्त्तक सत्य का स्वरूप नहीं धारण कर सकता है, चाहे वह मानव मन के लिये कितना ही अभिभावक, उसकी क्षमता के लिये कितना ही पर्याप्त, एकमात्र या चरम सद्वस्तु के रूप में कितनी ही सुगमतया स्वीकार्य क्यों न हो।

*

सर्वोच्च सत्य या सर्वोच्च सत्ता, चेतना, शक्ति, आनन्द और प्रेम जो कि निर्व्यक्तिक भी हैं और सव्यक्तिक भी और अतएव हमारी सत्ता के दोनों पार्श्वों को ऊंचा उठा ले जाते हैं,–कारण, हममें भी व्यक्तित्व का और अव्यक्तित्वमय तत्त्वों तथा शक्तियों के समुदाय का अस्पष्ट मिलन है,–इस प्रकार के सत्य या सत्ता, चेतना आदि का दिव्य दर्शन यज्ञ का प्रथम लक्ष्य है और साथ ही उसकी चरम सफलता की शर्त है। सफलता स्वयं हमारी सत्ता के उस 'तत्' के साथ मिलन का रूप ग्रहण करती है जो तत् कि हमारी दृष्टि और अनुभूति के समक्ष इस प्रकार व्यक्त होता है; और इस मिलन का स्वरूप त्रिविध होता है। एक तो आध्यात्मिक तत्त्व में, तादात्म्य द्वारा, मिलन होता है; दूसरा मिलन होता है इस परमोच्च सत्ता और चेतना में हमारी आत्मा के अन्तर्वास द्वारा; तीसरा, तत् और हमारी ऐहिक यन्त्रात्मक सत्ता के बीच प्रकृति का साधर्म्य या एकत्व-रूपी सक्रिय मिलन।

यह सब कठिन परिणति केवल तभी संभव हो सकती है यदि हमारी चेतना का बड़ा भारी परिवर्तन, आमूलचूल विपर्यय, प्रकृति का अलौकिक समग्र रूपांतर हो जाय।

प्रारंभ में हमारी सारी सत्ता की तैयारी और शुद्धि के अतिदीर्घ, प्रायः उकता देनेवाले और कठिन काल की आवश्यकता हो सकती है तबतक जबतक कि यह सत्ता महत्तर सत्य और प्रकाश के प्रति या भागवत प्रभाव और उपस्थिति के प्रति उद्घाटित होने के लिये उद्यत और योग्य न हो जाय। यद्यपि यह केन्द्रतः योग्य, उद्यत, उद्घाटित हो चुकी हो तथापि उस अवस्था से पूर्व दीर्घकाल की आवश्यकता होगी जब कि मन, प्राण और शरीर की हमारी सब गतियां, हमारे व्यक्तित्व के सब बहु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विध और संघर्षकारी अंग और तत्त्व रूपान्तर की कठिन और कठोर प्रक्रिया को स्वीकार करने योग्य बन जायंगे या स्वीकार कर के, उसे सहन कर सकेंगे। और चाहे हमारी सत्ता के सबके सब अंग इच्छुक हों फिर भी सबसे कठिन वह संघर्ष है जो हमें वर्तमान अस्थिर सृष्टि के साथ संबद्ध सार्वभौम शक्तियों के विरुद्ध जीतना होगा जब कि हम चेतना का वह अन्तिम अतिमानसिक परिवर्तन और विपर्यय करना चाहेंगे जिससे कि भागवत सत्य अपनी परिपूर्णता में हमारे अन्दर प्रतिष्ठित होकर रहे न कि केवल प्रकाशयुक्त अज्ञान जिसे कि वे शक्तियां अधिक शीघ्रता से प्रतिष्ठित होने देंगी।

जो कुछ इस समय कठिन या अव्यवहार्य प्रतीत होता है उसे संभव और यहांतक कि सुनिश्चित वस्तु में परिणत करने के लिये दो आभ्यन्तर परिवर्तन अत्यधिक सहायक होते हैं। किसी अन्तर-स्थित गुहाहित अन्तस्तम आत्मा का अग्रभाग-में-आगमन-रूपी क्रिया घटित होती है जो आत्मा कि मन की चंचल क्रियाशीलता से, हमारे प्राणिक आवेगों की हलचल से, भौतिक चेतना की तमसाच्छन्नता से आवृत थी,—ये मन आदि ही तीन ऐसी शक्तियां हैं जिन्हें हम इस समय, इनके अस्तव्यस्त संयोग में, अपनी आत्मा कहकर पुकारते हैं। अन्तस्तम आत्मा के अग्रभाग में आ जाने के परिणाम-स्वरूप केन्द्र में मोक्षजनक ज्योति और कार्य-साधक शक्ति के सहित भागवत उपस्थिति का अपेक्षाकृत निर्बाध विकास सम्पन्न होगा और हमारी प्रकृति के समस्त चेतन और अवचेतन स्तरों के भीतर उसके तेजःपुञ्ज का प्रसार होगा। यही दो चिह्न हैं, इनमेंसे पहला इस बात को सूचित करता है कि परम खोज के प्रति हमारी दीक्षा और समर्पण पूर्ण हो गये हैं, दूसरा सूचित करता है भगवान् द्वारा हमारे यज्ञ की चरम स्वीकृति को।

संकलनकर्त्ता—इन्द्रसेन

योग-दीक्षा

५

बहरमपुर जेल
८-६-२५

सविनय निवेदन,

आपका २४ मई का पत्र ३० को मिला था। तभी उत्तर दे देता, किन्तु आज जो बात वतलाना चाहता हूं वह मेरे लिये बहुत ही जरूरी है, इसीलिये मैंने एक सप्ताह देरी की है।

यथासंभव अपने अन्तर की जांच करके मैं इस सिद्धान्त पर पहुंचा हूं कि मुझे श्रीअरविंद के योग का ही अनुसरण करना होगा। किस प्रक्रिया के द्वारा मैं इस सिद्धान्त पर पहुंचा हूं, इस बात को अभी ठीक सिलसिलेवार लिखना संभव नहीं है। किन्तु मैंने अच्छी तरह से परीक्षा करके देखा है कि यह मानसिक झक या कौतूहल नहीं है। मन को दूसरी ओर ले जाने की कोशिश करने पर भी नहीं ले जा सका हूं। अगर यह झक है तो अजीब तरह की झक है—इस झक पर गालिब आना मेरे बस की बात नहीं है। श्रीअरविंद ने पूछा था कि तुम (अनिलवरण) योग क्यों करना चाहते हो। मालूम होता है इस प्रश्न का ठीक उत्तर मैं नहीं दे सकता—किन्तु मैं जितना जितना ही अपने अतीत जीवन की पर्यालोचना करता हूं उतना उतना स्पष्ट अनुभव करता हूं कि मानो समस्त जीवन में ही मैं योग के लिये तैयार होता आया हूं। मेरी पारिपार्श्विक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था विशेष सहायक न होते हुए भी, उच्च जीवन की ओर, आदर्श जीवन की ओर, मेरी बड़ी इच्छा थी। कर्म ही पूजा है (Work is worship), परोपकार इत्यादि मेरे जीवन के पथप्रदर्शक सिद्धान्त थे। किन्तु उच्च जीवन का, आदर्श जीवन का क्या तात्पर्य है, वह किस प्रकार से प्राप्त किया जाता है–इस संबंध में कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी। खूब कर्म करता था, अपने सुख-स्वार्थ की ओर विशेष ध्यान नहीं देता था, समझता था इस प्रकार चलने से एक न एक दिन प्रकाश देख पाऊंगा। ऐसी बात नहीं है कि मैं भोग में पड़ा ही नहीं किन्तु कभी किसी चीज में डूब नहीं गया और हमेशा ही अन्दर एक प्रकार का अनासक्त भाव अनुभव करता था। तीन वर्ष हुए जब "यौगिक साधन" पुस्तक पहले-पहल पढ़ी तब उसमें मानो नया प्रकाश पाया–इतने दिनों जिस चीज को खोजता था मानो वह मिल गयी है ऐसा मालूम हुआ। "मनुष्यभाव से मुक्त होओ देवभाव की प्राप्ति के लिये"–इस बात ने मेरे ऊपर मंत्र-शक्ति की भांति क्रिया की थी। कालीशक्ति के प्रति आत्मसमर्पण करने से वे ही सब ठीक कर देंगी–इस कथन से हृदय में जिस आशा का संचार हुआ था, जिस आनन्द को अनुभव किया था, उसका मैं शब्दों में प्रकाश नहीं कर सकता। तबसे "यौगिक साधन" की शिक्षा ने ही–जैसा उसे मैंने अपने आप ग्रहण किया था–मेरे जीवन को परिचालित किया है। मैंने बहुत-सी भूलें कीं, इस बात को अब समझ रहा हूं–मालूम होता है ये भूलें मेरे लिये जरूरी थीं। कई वर्ष तक किस प्रकार आंधी की भांति मैंने कर्म किया! बहुत ही बहिर्मुखी हो गया था, अन्तर्मुखी होने के लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया, शायद सामर्थ्य ही नहीं था–किन्तु, एक तरह का भरोसा था, विश्वास था कि मां सब ठीक कर देंगी। भीतर के कर्मी स्वभाव की प्रेरणा से कर्म की धारा में अपनेको डुबो देता और समझता कि भगवान् की आज्ञा के अनुसार कर्म करता हूं–मेरे संस्कार, आसक्ति और वासना मुझको नचातीं, मैं समझता कि मेरे लिये जो ठीक है, मां वही कार्य कर रही हैं। यह अवस्था साधक के लिये कितनी विपज्जनक है, यह बात मैंने ठोकर खाकर सीखी है–किन्तु मेरा विश्वास है कि मां के ऊपर मैंने जो भरोसा किया था वह बेकार नहीं गया। Essays on the Gita (गीता-प्रबंध) का पढ़ना अगला कदम रहा। मैंने समझा कि "यौगिक साधन" में जिस बात को मूलसूत्र के रूप में देखा था गीता-प्रबंध में वही बात विस्तृत रूप से वर्णित हुई है। मेरे कर्मी स्वभाव को गीता की शिक्षा बहुत अच्छी लगती थी। प्रायः दस मास पहले जब वारीन्द्र बाबू ने लिखा था कि श्रीअरविंद के योग को ग्रहण करने के लिये सिर का बोझ फेंककर निःसंग होना पड़ेगा, उस समय इस बात के मर्म की उपलब्धि नहीं कर सका था। जेल में आने पर भीतर की ओर देखने का जो सुयोग मैंने पाया वह मेरे लिये बहुत ही शिक्षाप्रद हुआ है–ठीक समय पर ही आपका पत्र पाया कि यदि मुझे श्रीअरविन्द का योग ग्रहण करना है तो कर्मक्षेत्र से अलग होना पड़ेगा। उसी समय श्रीअरविन्द के योग को ग्रहण करने का मुझे बड़ा आग्रह था–किन्तु शायद वह झक या कौतूहल हो इसलिये उस भाव को प्रश्रय नहीं दिया। किन्तु बाद में बहुत तरह से सोच-विचार करके देखा है कि मेरे लिये श्रीअरविन्द के योग का अनुसरण करने की आवश्यकता है।

मेरे लिये पूर्वतन राजनीतिक जीवन का अनुसरण करना अब संभव नहीं है। यहांपर इसका कारण लिख सकता हूं। मैं उच्च जीवन प्राप्त करना चाहता हूं। मैंने सोचा था कि निष्कामभाव से देश का कार्य करने से मैं उच्च जीवन प्राप्त कर सकता हूं। इसमें संदेह नहीं कि इतने दिन देश का कार्य करने से मेरी बहुत उन्नति हुई है–किन्तु इसके द्वारा और आगे नहीं बढ़ सकता, शायद नीचे की ही ओर चला जाऊं। इतने दिनों तक भीतर दृष्टिपात नहीं किया किन्तु अब जितना ही भीतर की ओर देखता हूं उतना ही उपलब्ध करता हूं कि बाहर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मालूम होते हुए भी कि यज्ञार्थ कर्म करता हूं यह मन के धोखे के सिवाय और कुछ नहीं है। भीतर ही भीतर मेरे संस्कार और वासना मुझको परिचालित करती हैं और हमेशा इनके वश में चलने से मैं क्या उन्नति कर सकता हूं? श्रीअरविन्द ने लिखा था कि साक्षीभाव को दृढ़ करना होगा। साक्षीभाव को समझता तो हूं किन्तु इसमें अपनेको दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित नहीं कर पाता हूं। जब निश्चेष्ट होकर अतीत की ओर ताकता हूं तब अच्छी तरह से उपलब्ध करता हूं कि मेरे अन्दर प्रकृति के तीन गुणों की क्रिया किस प्रकार चल रही है। किन्तु किसी कार्य में लगने पर साक्षीभाव कायम नहीं रहता, उस समय अपनेको दो खंडों में विभाजित नहीं कर सकता, ऐसा मालूम होने लगता है कि "मैं" करता हूं। कार्य जितना ही राजसिक होता है अहंकार उतना ही प्रबल होता है। ऐसी अवस्था में अहंकार से छुटकारा पाने के लिये, साक्षीभाव प्राप्त करने के लिये, राजनीतिक कर्म के परित्याग के सिवा और क्या उपाय है?

इसके अतिरिक्त मैं अब पूर्वतन राजनीतिक जीवन व्यतीत भी नहीं कर सकता। पारिपार्श्विक अवस्था ने मेरे संस्कार, आसक्ति और वासना का अवलम्बन करके नाक में नकेल डालकर मुझे नचाया है, मैं महत् कर्म कर रहा हूं इस भाव ने मेरे अहंकार की तृप्ति की है। इससे अब मुझको तृप्ति नहीं होती—आंखों पर पट्टी लगे हुए बैल की भांति चाबुक की ताड़ना से कोल्हू के चारों ओर घूमने में अब मुझे उत्साह नहीं है। मैं मुक्ति का पथ देख रहा हूं—और तब भी इस कोल्हू में बंधा रहूंगा? कोशिश करने पर भी अब यह बात मुझसे नहीं हो सकती। मेरे जैसा अन्ध जो स्वयं नहीं जानता कि भीतर में क्या हो रहा है दूसरेको कैसे मार्ग दिखावेगा? जो अपनी शक्ति को संगठित नहीं कर सकता वह देश की शक्ति को कैसे संगठित करेगा? इसी बीच में देशोद्धार के सब विचारों को मैंने छोड़ दिया है। जेल से छूटने पर ग्रामसंगठन का कार्य करूंगा, आदर्श गांव तैयार करूंगा और इसी आदर्श का सर्वत्र प्रचार करूंगा—इस प्रकार के कितने कार्यों की योजना बनायी थी और उसके अनुसार पढ़ने लिखने का भी आयोजन किया था—उन सब विचारों का मैंने त्याग कर दिया है। मन से सारी राजनीतिक चिंताएं एकदम झाड़झूड़कर बाहर फेंक दी हैं। जेल के अन्दर लोग अखबार कितने आग्रह के साथ पढ़ते हैं—मुझे अब अखबार छूने और पढ़ने की इच्छा नहीं होती। श्रीअरविन्द ने जिस अभ्यास का उपदेश दिया है उसीको कर रहा हूं—सत्य का जो कुछ आभास पाया है घुमाफिराकर उसीका चिन्तन करता हूं, ध्यान करता हूं। श्रीअरविन्द की पुस्तकों का पाठ करता हूं। पढ़ने की अन्य पुस्तकों में केवल धर्मपुस्तकें हैं—उनको भी दार्शनिक अध्ययन के लिये नहीं वरन् अपनी अनुभूतियों को दृढ़ करने के लिये पढ़ता हूं। उदाहरणार्थ रामकृष्णलीलाप्रसंग इत्यादि। इस अवस्था में मैं क्या साधना करूं, क्या पुस्तक पढ़ूं, क्या कर्म करूं—श्रीअरविन्द इन बातों के संबंध में विशेष रूप से मुझे उपदेश दें। श्रीअरविन्द ने लिखा है—"एक शांत ऊर्ध्वदृष्टि चाहिये, एक अचंचल प्रतीक्षा का भाव चाहिये"—किन्तु यह प्रतीक्षा किस प्रकार की होगी? मन को क्या एकदम खाली करना होगा या कोई ध्यान-धारणा करनी होगी? मन को खाली भी किस प्रकार किया जाय?

यह मैंने निश्चय किया है कि पूर्वतन राजनीतिक कर्म से हट जाऊंगा। मुझे कभी कभी डर होता है कि कहीं तामसिकता तो मुझे नहीं घेर रही है। किन्तु भीतर तामसिकता का कोई लक्षण नहीं देखता। सत्य के नूतन आभास को पाकर प्राणों में खूब सुख अनुभव कर रहा हूं—ये सब तो तामसिकता या अवसाद या अज्ञान के लक्षण नहीं हैं! मेरे पूर्व कर्मों के फलस्वरूप भीतर जिस प्रकार विविध संस्कारों की सृष्टि हुई है बाहर भी मैं वैसे ही बहुत से बंधनों में फंस गया हूं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन सब बंधनों को काटकर कर्मक्षेत्र से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग होना बहुत ही कठिन है। किन्तु भरोसा है कि जब मां ने योगजीवन के अनुसरण की प्रबल इच्छा दी है तब वे ही मेरे आन्तरिक और बाह्य सब बंधनों को काट देंगी। मेरे भीतर जो कुछ हो रहा है उसका कुछ परिचय मैंने ऊपर दिया है—इसके संबंध में श्रीअरविन्द के क्या विचार हैं मुझे लिखियेगा और उनका उपदेश बतलाइयेगा। उन्हींके ऊपर मैं भरपूर निर्भर हूं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उन्हींके द्वारा मां मेरे योगजीवन को गढ़ डालेंगी।

मेरा सामर्थ्य कितना है इसकी माप करना मेरे लिये संभव नहीं। किन्तु आपने जो लिखा है "शायद आपका कर्मजीवन नष्ट हो जाय और योगजीवन भी न बने" इसका मुझे कुछ भय नहीं। मैं नहीं समझ सकता कि सत्य को न पाकर कर्मजीवन से क्या लाभ हो सकता है। और यदि योगजीवन न भी बने तो इसमें शोक करने की क्या बात है? नहि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति—ऐसा मेरा विश्वास है। इस जन्म में सिद्ध न हो तो अगले जन्म में होगा।

आपकी दोनों पुस्तकें पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। Essays on the Gita (गीता-प्रबंध) के अनुवाद के ३७ पृष्ठ बाकी हैं। जल्दी जल्दी करने से अबतक खतम हो गया होता—किन्तु यह अनुवाद-कार्य मानो मेरी साधना का एक अंग हो गया है इसलिये इसमें जल्दबाजी नहीं कर रहा हूं। मेरा इरादा है इसके बाद ईशोपनिषद् का अनुवाद करूंगा। अनुवाद करने में जैसे भीतर प्रवेश करना पड़ता है केवल पढ़ने में वैसे नहीं होता इसलिये अनुवाद-कार्य मुझे बहुत अच्छा लगता है। किन्तु ईशोपनिषद् अभी हाल ही में मिली है। अभी पढ़ना आरंभ नहीं किया। इस संबंध में श्रीअरविन्द के विचार को जतलाइयेगा। मैं अब क्या करूं, किस प्रकार से चलूं इस संबंध में वे विशेष रूप से उपदेश दें। अन्यान्य प्रश्नों की चर्चा आज नहीं करूंगा। बहुत सी समस्याएं मन में उठती हैं और फिर अपने आप उनका ऐसा समाधान हो जाता है कि उससे संतुष्ट हो जाता हूं। इस कारण आप लोगों को कष्ट नहीं देता। मैं अच्छी तरह से हूं। आप अपने यहांके सब लोगों का शारीरिक कुशल-संवाद दें।

निवेदक

अनिलवरण राय

(श्री अनिलवरण राय का योग-विषयक पत्र-व्यवहार 'योग-दीक्षा' शीर्षक के नीचे हम धारावाही रूप से दे रहे हैं। इस बार केवल एक पत्र ही दिया है। अगली बार श्री अनिलवरण राय का एक और पत्र होगा और साथ ही श्री नलिनीकांत गुप्त का दोनोंका उत्तर। —सं०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताकुञ्ज—

श्रीअरविन्द दर्शन

ज्योति श्री अरविन्द, चेतना के दिव्योत्पल,
पूर्ण सच्चिदानन्द रूप, शोभित स्वर्णोज्ज्वल;
अतिमानस में विकसित तुम आलोक हसित दल,
ओतप्रोत जिसमें असीम आनन्द रजत जल !

स्तर पर स्तर कर पार चेतना के, योगेश्वर,
स्वर्णारुण से नव्योदित तुम चिदाकाश पर !
मानव से ईश्वर, ईश्वर से मानव बनकर
आये लौट धरा पर, ले नव जीवन का वर !

तुम भविष्य के दिव्यालोक, देव, अति जीवित,
मानव अन्तर तुमसे ऊर्ध्व, अतल, अति विस्तृत;
रुद्ध द्वार कर मुक्त हृदय के, चिर तमसावृत,
अन्तर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतित !

अधिमानस से भी ऊपर, विज्ञान भूमि पर
तुम अध्यात्म तत्त्व के हिमगिरि से स्थित निर्भर !
ज्योतिमूर्त चेतना ज्वलित हिमराशि सी निखर
मर्त्य स्वर्ग के पार उठाये सत्य के शिखर !

एक स्तम्भ उपनिषत् ब्रह्मविद्या के निश्चय,
ज्योति स्तम्भ दूसरा देव का शब्द असंशय;
दिव्य चेतना सेतु ऊर्ध्व जिनपर ज्योतिर्मय
आर पार भव जीवनाब्धि के, अतिमानव, जय !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया वेद वेदांगों का जब तुमने मन्थन
हुए प्रकाशित तत्त्व, जगा मन्त्रों में जीवन;
परम व्योम से तुम्हें ऊर्ध्वचित् ध्यान मग्न मन,
विद्युत् लेखा तुल्य ऋचाओं का हुआ स्फुरण !

स्वर्ण नील के मध्य रजत की अनिल में सुघर
छोड़ दिव्य स्वप्नों की रत्नच्छाया भास्वर,
स्वर्ग धरा पर लाने, आये स्वयं तुम उतर
जन मंगल हित पार्थिवता का भार वहन कर !

स्वर्ग और वसुधा का करने स्वर्णिम परिणय
इन्द्रचाप का सेतु रच रहे तुम ज्योतिर्मय;
नृत्य शील चिर हरित यौवना भू पर छबिमय
तुम अनन्त की अमर वृत्तियां बोकर अक्षय !

अग्नि विहग से, स्वर्ण शुभ्र तुम खोल दिव्य पर
विचर रजत नीहार शांति में, दिशि पल के पर,
प्रसव व्यथित वसुधा हित लाये अखिल शोकहर
रश्मि कलश में दिव्य प्रीति की स्वर्ण सुरा भर!

नील शकुनि, तुम गाते देवों स्वर्दूतों हित,
चिदानन्द के अग्नि बीज भू पर झरते स्मित !
देश काल से परे कौन वह व्योम दुखरहित
शाश्वत सुख का हर्ष जहां से लाते तुम नित !

कैसा वहां प्रकाश, शांति, आनन्द चिरन्तन ?
जहां सच्चिदानन्द स्वयं करते सहज सृजन !
उठा सत्य निज आनन से हिरण्य अवगुण्ठन
जहां सूक्ष्म सुन्दरता का सजती सम्मोहन !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छायाभा से रचित वहां क्या सप्तदल भुवन ?
काल दिशा को लिये अंक में करता नर्तन ?
जहां स्वयं प्रभु रहते कैसा वह परम गगन ?
जहां अनिर्वचनीय अमित आनन्द का स्रवण ?

गूढ़ तमस में, जड़ में हो चित् शक्ति तिरोहित,
अन्न प्राण मन में फिर कैसे हुई प्रस्फुटित,
कवि ऋषि, तुमने सूक्ष्म दृष्टि से कर निज चित्रित
रहस शक्ति से निखिल सृष्टि फिर कर दी विकसित !

खोल अशेष रहस्य सृजन का तुमने गोपन
दिया विश्व को नव जीवन विकास का दर्शन !
ज्योति चिह्न जो छोड़ गये भू पर प्रबुद्ध जन
सूचित उनसे अतिमानव का पुण्य आगमन !

ऊर्ध्व चेतना का हो समदिक् मूर्त संचरण,
धरा स्वर्ग के ज्योति छत्र सा भेद दिव्य मन,
बहिरन्तर जीवन का कर तुम, देव, उन्नयन
दिव जीवन का धरती पर कर रहे अवतरण !

युग युग के पूजन आराधन जप तप साधन
आज कृतार्थ अखिल आदर्श, शास्त्र, नय, दर्शन,
मनुज जाति का सफल सकल जीवन संघर्षण
पूर्ण आज प्रभु तुममें दिव्य देह धर नूतन !

जल जीवन में मच्छ, कच्छ तुम कर्दम में बन,
भू जड़त्व में शूकर, वनचर में नृसिंह तन;
आदि मनुज वामन, शूरों में राम परशुपण,
मर्यादामय राम, विश्वमय बने कृष्ण घन !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज लोक संघर्षों से जब मानव जर्जर
अतिमानव बन तुम युग संभव हुए धरा पर;
अन्न प्राण मन के त्रिदलों का कर रूपान्तर
वसुधा पर नव स्वर्ग सँजोने आये सुन्दर !

छू पाते हैं पंख कल्पना के न पद कमल
विकसित जो अन्तर्जल में जाज्वल्य ज्योति दल !
घेरे तुम्हें जननि का ज्योतिष्मत् चिन्मण्डल
मुग्ध चमत्कृत चक्षु वाक् मन पा जाते फल !

दूत दिव्य जीवन के, दिव्य तुम्हारा दर्शन,
अतिमानस का स्पर्श प्राण मन करता चेतन !
मानव उर प्रच्छन्न तुम्हारा नव पद्मासन
तन मन प्राण हृदय ये तुमको, देव, समर्पण !

—सुमित्रानंदन पंत

तुमको—

मैं तुमको पहचान गया हूं।
बिना कहे ही सभी तुम्हारी,—बातें दिल की जान गया हूं ।।

मौन-हृदय अनुभव करता जो,—वह आनन्द नहीं कहने में।
चुप की भाषा के मिठास को, मैं कुछ तुमसे जान गया हूं ।।

लघु-सामान्य—असाधारण है, मरना ही निरवधि जीवन है।
सत्य उलट कर भी रहता है,—सत्य—, इसे मैं मान गया हूं ।।

—वंशीधर विद्यालंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादकीय–

विचार और अभीप्सा

१५ अगस्त

यह पुनीत तिथि श्रीअरविन्द का जन्मदिवस है। १५ अगस्त सन् १८७२ को उनका जन्म हुआ था और आज १५ अगस्त १९४७ को उनके ७५ वर्ष पूरे होते हैं। सामान्य लौकिक दृष्टि से वे एक महान् विचारक, और लेखक हैं, जगत्-प्रसिद्ध हैं, भारत के गौरव हैं। लोग उनका जन्म-दिन मनायँगे। उनके ७५ वर्ष पूरे होने पर प्रभु को धन्यवाद देंगे। परंतु जिन्होंने श्रीअरविन्द के व्यक्तित्व को जरा समीप से अनुभव किया है, आत्म-जिज्ञासा के नाते उनका सम्पर्क प्राप्त किया है, उनसे जीवन-स्वयं की याचना की है, वे उनको बहुत भिन्न रूप में जानते हैं। उनके लिये श्रीअरविन्द ऐसे शक्ति-सम्पन्न अस्तित्व हैं, जो शुद्ध आत्मबल तथा ब्रह्मतेज से व्यक्ति, समाज तथा मनुष्यजाति का हित संपादित करते हैं। वे श्रीअरविन्द को एक ऐसे अपूर्व आध्यात्मिक योद्धा के रूप में जानते हैं जो कि मानव-प्रकृति में एक अलौकिक क्रांति के लिये सतत यत्नशील हैं। वे उन्हें भारतीय संस्कृति तथा भारत के ऐसे उद्धारक के रूप में जानते हैं जिन्होंने अपनी कार्यशैली को जरूर बदला परन्तु अपने उद्देश्यों को कभी नहीं छोड़ा। भारत की स्वाधीनता उनका एक उद्देश्य था। इसके लिये उन्होंने पहले एक प्रकार से काम किया, पीछे दूसरे प्रकार से। उनकी दृष्टि में भारत ने स्वाधीन होकर संसार के अन्दर आध्यात्मिक कार्य का प्रवर्तक बनना है।

सौभाग्य से १५ अगस्त के दिन ही भारत स्वाधीन हो रहा है। श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर ही उनके एक महान् उद्देश्य की पूर्त्ति हो रही है। १५ अगस्त हमारे इतिहास में एक आधारभूत तिथि होगी। इसमें सन्देह नहीं कि हमारी स्वाधीनता देश-विभाजन के संयोग से कलंकित हो रही है। हममें बहुतेरे स्वाधीनता-लाभ के आनन्द को इतना अनुभव नहीं कर रहे जितना कि वे विभाजन से खिन्न हैं। ठीक इसी विषय पर हमने इस अंक के शुरू में श्री माताजी की अनुभूति को दिया है। ३ जून के दिन वायसराय तथा नेताओं के भाषणों को सुनने के बाद जो श्री माताजी ने अनुभव किया वह उन्होंने कुछ शब्दों में रख दिया। वे शब्द तथा उन शब्दों की प्रेरणाएं बड़ी विचारणीय हैं। वे गंभीर अनुभव से उपजी हैं और आध्यात्मिक सत्य में स्थित हैं।

देश का विभाजन निश्चय ही कोई हल नहीं। आज देशों और जातियों के बृहत्तर संगठन हो रहे हैं। युग की सारी भावना 'एक संसार' को सम्पादित करने की है, न कि देश और जातियों को विभाजित करने की। जो भारत में इस समय हुआ है वह युगधर्म के विपरीत है।

इससे फिर एक और सत्य पर भी आघात पहुंचा है। जैसे व्यक्ति के शरीर, प्राण और मन एक आत्मा से अधिकृत होते हैं ठीक वैसे ही देश और जातियों की भी आत्मा होती है। यह एक ऐसा तथ्य है जिसे हमें युक्तियों से खंडित नहीं कर देना चाहिये। किसी देश की आत्मा का अपना धर्म होता है, ध्येय और लक्ष्य होता है। उसे हम उस देश के इतिहास की विशेष भावना के रूप में अनुभव कर सकते हैं तथा जनता के सामान्य स्वभाव और प्रकृति में देख सकते हैं। आज मनोविज्ञानवेत्ता राष्ट्रीय चरित्र, गुण और स्वभाव को वैज्ञानिक तथ्य बतलाते हैं। देश की आत्मा इनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक गम्भीर सत्य है। वह जाति का आध्यात्मिक सत्य है जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। वह आत्मा भले ही कभी तिरोहित हो जाय और जाति उतने समय के लिये अधोगति में जा पड़े या फिर वह आविर्भूत होकर जाति को उन्नति के पथ पर चलने के लिये प्रेरित और उत्साहित करे। जो आवश्यक बात है वह यह कि हम अपने देश की आत्मा की सच्ची प्रेरणा को अनुभव करने का यत्न करें और सदैव उसके अनुगामी बनें। उससे कभी विमुख न हों। इस प्रकार देश देश अपनी अपनी विशेष प्रतिभा की देन से सामान्य मानव संस्कृति को संवर्द्धित करने में सफल होगा।

भारत का मूल अस्तित्व एक है। इसका हजारों वर्ष का लम्बा इतिहास इसके सांस्कृतिक ध्येय और पुरुषार्थ को साफ प्रकट करता है। राजनीतिक एकता कभी थी, कभी नहीं भी थी। परन्तु सांस्कृतिक एकता लगभग बराबर रही है। भारत के सांस्कृतिक अस्तित्व पर बार-बार आघात हुए हैं। परन्तु देश हर बार ही विघ्न-बाधाओं को पार कर अपनी निहित शक्ति का प्रमाण देता रहा है। भारत का मौलिक अस्तित्व अखंड है, अविभाज्य है, उसकी आत्मा अमर है।

देश का विभाजन निश्चय ही हमारी वर्तमान परिस्थिति का हल नहीं हो सकता। यह एक कसौटी है, कठिन परीक्षा है। यदि हम विभाजन के इस रूप को खूब अच्छी तरह अनुभव कर सकें तो इस स्थिति में हमारे लिये योग्य व्यवहार करना अपेक्षाकृत आसान हो जायगा। निश्चय ही खिन्नता, निराशा और निरुत्साहता कठिनाई पर विजय पाने में सहायक नहीं होते। प्रतिक्रिया का कर्म भी स्थिति को बिगाड़ देता है। यथासंभव शांत और स्थिर भाव से स्थिति की सत्यता को जानते हुए जो कर्म किया जाता है वही यथार्थतः फलप्रद हो सकता है।

आज विभाजन का दौर-दौरा है। ऐसा प्रतीत होता है कि देश फिर कभी संयुक्त नहीं हो पायगा। परन्तु वर्तमान समय में हमने कितनी ही अप्रत्याशित बातें होती देखी हैं। निश्चय ही हम यह नहीं कह सकते कि देश का पुनः एक हो जाना असंभव है। हमें देश के भविष्य में अडिग और सजीव विश्वास होना चाहिये। भारत की आत्मा पुनः अपने ओजस्वी स्वरूप में प्रकट हो रही है। उसका हम अभिवादन करें। सम्पूर्ण देश की बृहत्तर स्वाधीनता के लिये धीरज से यत्नशील रहें। देश की आत्मा अपने एकत्व को चरितार्थ करेगी। भारत एक और अविभाज्य है। भारत अमर है।

१५ अगस्त हमारे इतिहास में निश्चय ही एक उज्ज्वल तिथि रहेगी। देश की स्वाधीनता के नाते। तथा श्रीअरविन्द के जन्म-दिन के नाते। श्रीअरविन्द मानव विकास के लिये कैसी विभूति हैं यह हम आज जानने में समर्थ नहीं हैं। यह तो भावी शताब्दियां ही हमें बतलायंगी।

एशियाई सम्मेलन के संस्मरण

"मैं संस्कृत जानता हूं, योग शब्द मैंने बहुत बार पढ़ा है परन्तु मैं इसके ठीक और पूरे अर्थ नहीं समझता" जार्जिया के एक प्रतिनिधि ने प्रसंगवश कहा। यह कहने में उनका भाव अपूर्व उत्सुकता और जिज्ञासा का था। वे पूछ रहे थे, योग की यथार्थ परिभाषा क्या है ?

श्रीअरविन्द के आध्यात्मिक कार्य का प्रकट प्रचार पिछले कुछ वर्षों में ही धीरे-धीरे विकसित हुआ है। ऐसे गंभीर सांस्कृतिक कार्यों का प्रचार और विस्तार अपने ही ढंग से होता है। एशियाई कान्फरेन्स के अवसर पर श्रीअरविन्द-कार्य की आयोजना का निर्णय अचानक ही हुआ और मैं २३ मार्च से होनेवाले सम्मेलन में भाग लेने के निमित्त १७ मार्च को पांडिचेरी से चल २० मार्च को देहली पहुंचा। मैं अपने अन्दर एक गंभीर भाव और प्रेरणा को लिये हुए था और उस भाव और प्रेरणा का सरल माध्यम बनने की अभीप्सा से भरपूर था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही एक लौ सी लगी थी, एक आन्तर स्थिति तैयार हो रही थी—कि यह सब काम जो होना है वह सरलता से हो। इसके करने में मैं आग्रह, प्रयास तथा इनकी प्रतिक्रिया की झंझट से मुक्त रहूं। मैं सरल व्यवहार करूं। कार्य की आयोजना यह बनी कि एक तो सम्मेलन-भवन में आश्रम के संपूर्ण साहित्य को सुचारु ढंग से उपस्थित कर दिया जाय जिससे कि एशियाई देशों के प्रतिनिधि तथा अन्य अतिथिजन श्रीअरविन्द-साहित्य को अच्छी तरह देख-भाल सकें तथा खरीदना चाहें तो खरीद भी सकें। साथ में यह भी सोच लिया गया कि कोई उपयुक्त व्यक्ति ही दुकान पर बैठें जो श्रीअरविन्द तथा आश्रमसंबंधी प्रश्नों का योग्यता से उत्तर भी दे सकें। इसके अलावा जो कोई श्रीअरविन्द तथा आश्रम के कार्य के संबंध में विशेष रूप से जानना चाहते थे उनसे मैं अलग मिला करता था। सामान्य रूप से भी अनेक लोगों से मिलने का अवसर हो जाता था और तब उनसे प्रायः श्रीअरविन्द और उनके आश्रम के बारे में ही बात होती। पुस्तकों की दुकान का प्रयोजन श्रीअरविन्द-साहित्य के लिये सामान्य परिचिति पैदा करना था और व्यक्तिगत बातचीत द्वारा व्यक्तियों की जिज्ञासा को यथासंभव पूरा करना तथा उनमें श्रीअरविन्द के आध्यात्मिक कार्य के लिये भावना और प्रेरणा को पैदा करना था। प्रधान रूप से उस बृहत् सम्मेलन पर श्रीअरविन्द-कार्य की ये ही दो धाराएं थीं। इनके अतिरिक्त जो दो एक सार्वजनिक भाषण हुए वे गौण-रूप ही थे।

सम्मेलन कई दिनों तक चलता रहा। और उपस्थिति बिलकुल सार्वभौम थी। एशिया के देशों के प्रतिनिधियों के अलावा इंगलैंड, अमरीका और रूस के भी दर्शक मौजूद थे तथा भारतवर्ष के तो चुने-चुने लोग सब आये हुए थे ही। सप्ताह भर में पुस्तकों की दुकान पर उस भवन में रहने और आने-जानेवाले लोग प्रायः एक न एक बार सभी ही आये। अनेकों ने वहां खड़े-खड़े अनेकों पुस्तकों को उलटा-फेरा और पढ़ा। बहुतेरों ने पुस्तकें खरीदीं। कइयों ने बड़ी उत्सुकता से कितनी ही तरह के प्रश्न पूछे। व्यक्तिगत भेंटों का हाल यह था कि सप्ताह भर का प्रायः सारा समय ही उनसे भर गया। कई लोग ऐसी आश्चर्यजनक रुचि और जिज्ञासावाले थे कि उनसे दो तीन चार चार बार भेंट हुई और घंटों बातचीत हुई। उनकी आध्यात्मिक ज्ञानपिपासा ही अच्छी तीव्र थी। इन लोगों से संबंध लगभग स्थायी सा रूप धारण करता दिखने लगा। अधिकांश लोगों से भेंट एक एक बार ही हुई, ज्यादह अवकाश भी न था। इनमें-से अनेक भेंटें बड़ी सुन्दर थीं। परन्तु बहुतेरी निष्फल सी भी प्रतीत हुईं।

सन् १९४४ में श्रीअरविन्द-कार्य के संबंध में किये गये एक भ्रमण का वृत्तांत हम पहले "जिज्ञासुओं से भेंट" शीर्षक के नीचे दे चुके हैं। उस वृत्तांत का एक सामान्य संस्कार यह था कि वास्तव में आध्यात्मिक रुचि का अभाव नहीं। मनुष्य हर जगह आध्यात्मिक जिज्ञासुओं तथा विशेष रूप से श्रीअरविन्द में श्रद्धा-भक्तिवालों तथा उनके साहित्य से परिचिति रखनेवालों से मिल पाता है। इस सम्मेलन में भी कई ऐसे विदेशी सज्जनों से मिलने का अवसर हुआ जिन्होंने श्रीअरविन्द को पहले से पढ़ रखा था तथा जो उनके प्रति विशेष भक्तिभाव रखते थे और भारत में आकर उनके बारे में विशेष रूप से जानने का अवसर पाकर बड़े प्रसन्न थे।

जार्जिया के सज्जन ने बड़ी ही उत्सुकता से योग की ठीक परिभाषा जाननी चाही थी। वे संस्कृत के विद्वान् थे। उन्होंने कालिदास की शकुन्तला का जार्जियन भाषा में अनुवाद कर रखा था, अब वे महाभारत के कुछ खंडों का करना चाहते थे। भारतीय संस्कृति से परिचय रखते थे। पर योग को पुरातन भारत की ही विचारधारा मानते थे। वर्तमान युग में श्रीअरविन्द के कार्य को सुनकर उन्हें आश्चर्य होना अनिवार्य था। योरुप में प्रायः लोग यह समझते हैं कि पुरातन भारत सांस्कृतिक दृष्टि से निश्चय ही महान् था परन्तु आधुनिक भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो बिलकुल भिन्न है। योग प्राचीन ऋषियों की अलौकिक विद्या थी परन्तु आज इसका धनी कौन है। योग तो आज कोष का ही एक शब्द मात्र है, जीवन की सजीव शैली नहीं। जार्जियन महोदय का मस्तिष्क इन सब संस्कारों से लदा पड़ा था और योग का सजीव प्रयोग सुनकर वे इसकी ठीक परिभाषा को जानने के लिये लालायित हो उठे। मैंने थोड़े से समय में योग की सामान्य और ऐतिहासिक व्याख्या की। फिर विशेष रूप से श्रीअरविन्द के पूर्णयोग के स्वरूप का प्रतिपादन किया। उन्होंने श्रीअरविन्द-योग की कुछ पुस्तकों के नाम पूछे। मैंने बताये, उन्हें वे शीघ्र ही दुकान पर आ खरीदकर ले गये। उन्होंने मुझे जार्जिया के एक दूसरे विद्वान् व्यक्ति का नाम बताया और कहा कि वे अध्यात्मवाद में बड़ी रुचि रखते हैं और श्रीअरविन्द की पुस्तकों को बड़ी प्रसन्नता से पढ़ेंगे।

सम्मेलन के उन सात दिनों के अनेक सम्पर्कों और अनुभवों का एक और प्रमुख संस्मरण है वह सुन्दर समागम जो कि वर्मा के एक हिन्दुस्तानी सज्जन से हुआ। ये सज्जन सहज ही श्रीअरविन्द-साहित्य की सजी हुई अलमारियों की ओर आकृष्ट हो गये। वहां उन्होंने पुस्तकें देखीं तथा श्रीअरविन्द और आश्रम का वृत्तान्त-समाचार पूछने लगे। जब इन्हें पता चला कि कोई आश्रम से आया हुआ सम्मेलन में उपस्थित है तो मुझसे मिलने के लिये उत्कण्ठित हो उठे। मिलने पर मैंने स्पष्ट अनुभव किया कि उनके अन्दर पुरानी जिज्ञासा ही नहीं बल्कि कुछ अनुभव भी हैं। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक रुचि के विकास का इतिहास सुनाया। बहुत वर्ष हुए उन्होंने श्रीअरविन्द की २, ३ छोटी-छोटी पुस्तकें पढ़ी थीं। और उनसे बड़ा आनन्द लाभ किया। लड़ाई के दिनों में वर्मा में उन्हें अनेक अत्यन्त विकट स्थितियों में अद्भुत प्रेरणायें मिलीं। वे प्रेरणायें जब प्राप्त हुईं तब बुद्धि और युक्ति से बिलकुल भी सम्पुष्ट नहीं की जा सकती थीं। परन्तु उनमें बल ऐसा था कि वे उन्हें बुद्धि से अस्वीकार करते हुए भी व्यवहार में उन्हींके अनुसार चले। युद्ध-काल की उनकी परिस्थितियां अत्यन्त रोमांचकारी थीं और प्रेरणायें शुद्ध आन्तरिक स्फुरणायें प्रतीत होती थीं। वे बौद्धिक विचारपूर्ण धारणायें न थीं। उन्हें हम यहां दे नहीं सकते। परन्तु वे अद्भुत आन्तरिक गतियां थीं और वे आश्चर्यजनक रूप में सत्य तथा सफल निकलीं। इनका प्रभाव उनके चित्त पर गहरा अंकित था। वे कहते थे, निश्चय ही, हममें बुद्धि से परे कोई और जानने का साधन है—ऐसा साधन जो किसी परिस्थिति के सार तथा सत्य को सहज स्वाभाविक स्फुरणा तथा प्रेरणा के रूप में जान लेता है। उसे विश्लेषण नहीं करना होता, उसे पक्ष-विपक्ष नहीं विचारना होता, न ही प्रमाण-अनुमान जुटाना-लगाना होता है। फिर यह कि संसार में जरूर ही कोई चेतन अधिष्ठातृ-शक्ति है जो सब कुछ जानती मालूम देती है और सर्वथा सद्भावपूर्ण है। हमारी सहज स्वाभाविक स्फुरणायें उसी व्यापक प्रेमपूर्ण सर्वज्ञ उपस्थिति की प्रेरणायें होती हैं।

उनकी Intuition (अन्तर्ज्ञान) तथा Omnipresent Reality (सर्वव्यापक सद्वस्तु) की भावनाएं बड़ी ही जीवन्त थीं। जब वह इनकी चर्चा करते तो उनका मुखमण्डल बड़े ओजस्वी भाव से दीप्त हो उठता।

उनकी अभीप्सा अब यह थी कि जैसे भी हो मनुष्य को अपने अन्दर वह स्फुरणात्मक करण विकसित करना चाहिये जिससे कि वह सर्वज्ञ के ज्ञान को प्राप्त कर जीवन की हर परिस्थिति में उसके अनुसार बर्ताव कर सके। मुझसे बार बार कहते—यही स्थिति और शक्ति कैसे पैदा की जाय? यह जिज्ञासा उनकी ऐसी तीव्र मालूम देती थी मानो वे अनुभव करते हों कि साधारण मानव बुद्धि के ही आश्रय पर रहने में कुछ मजा नहीं। उस प्रत्यक्ष ज्ञान को प्राप्त करने की शक्ति पैदा होने पर ही जीवन जीवन बनेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह प्रश्न उनकी जिज्ञासा का केन्द्र था। इसीके सम्बन्ध में योग, साधना आदि पर हमारी घण्टों चर्चा चलती रही। श्रीअरविन्द उनके लिये योग आदि विषय के अद्वितीय गुरु हैं। आज संसार में इस विद्या के प्रवर्त्तक हैं। इसलिये श्रीअरविन्द तथा उनके आश्रम के विषय में पूछताछ करते हुए वे थकते ही न थे।

भारत से जाते समय वे बहुत-सा श्रीअरविन्द-साहित्य साथ ले गये और कहने लगे कि बर्मा में मुझे श्रीअरविन्द का एक तुच्छ सेवक समझना, मेरे योग्य सेवा निस्संकोच लिखना। और प्रार्थना की कि मेरी जिज्ञासा सम्भवतः श्रीअरविन्द तथा श्री माताजी से निवेदन करनी।

इनके द्वारा बर्मा के कई प्रतिनिधियों से भेंट हुई और थोड़ी बहुत बातचीत भी हुई। परन्तु उनमेंसे अधिकांश राजनीतिक प्रश्नों में रुचि रखते थे। अथवा उस समय वही उनके मस्तिष्क को घेरे हुए थे।

बर्मा के उक्त हिन्दुस्तानी सज्जन निश्चय ही अपूर्व व्यक्ति थे। उनका सम्पर्क सारे सम्मेलन के सम्पर्कों में उत्तम था। इनके अलावा जेरुसलम के एक प्रोफेसर भी अत्यन्त गम्भीर जिज्ञासु निकले। उनसे पहली बार भेंट एक दूसरे व्यक्ति के द्वारा हुई थी लेकिन एक बार मिलने के बाद फिर हमेशा ही "एक और बार" "एक और बार" मिलने के प्रोग्राम बनते गये। हर भेंट के अन्त में ही वे कहते "अच्छा, फिर अगली बार हम सब मिल सकते हैं।" और हर भेंट के समय वे अपनी नोटबुक और पेन्सिल लेकर बैठ जाते। प्रश्न पहले से तैयार रखते और मेरे उत्तरों में से जहां-तहां नोट लेते चले जाते। वे वयोवृद्ध जीवन-अनुभवी प्रोफेसर एक युवक विद्यार्थी की अपेक्षा कहीं अधिक जिज्ञासु और तत्पर थे।

एक दिन उन्होंने कहा कि मैं नित्य सवेरे दिन का प्रोग्राम बना लेता हूं और सायंकाल तक उसे पूरा करने का यत्न करता हूं। परन्तु शायद ही कभी मेरा बनाया हुआ प्रोग्राम पूरा हुआ होगा और इसलिये प्रायः नित्य ही सोते समय मेरे मन में खेद होता है—यह काम छूट गया, वह छूट गया इत्यादि। बतलाइये कुछ इसका भी उपाय है?

मैंने कहा यहां कर्म के सम्बन्ध की मूलगत योग्यायोग्य मनोवृत्ति का प्रश्न है। यदि मनुष्य कर्म में अहंकारमयी चेतना से प्रवृत्त होता है, यदि वह यह समझता है कि मैं एक निरपेक्ष स्वतन्त्र कर्त्ता हूं, यह काम मेरी एकाकी शक्ति पर निर्भर है, मैं नहीं करूंगा तो अत्यन्त हानि होगी तो, निश्चय ही, वह कर्म के सम्बन्ध में घोर सोच-विचार करेगा तथा उसके करने में रजोगुणी आवेशों से प्रवृत्त होगा। फिर परिणाम के विषय में भी उसे विशेष चिन्ता होगी। सफलता-असफलता में हर्ष और शोक होंगे। इसके विपरीत यदि मनुष्य इस सत्य को जानता है कि संसार में अन्तिम कर्तृत्व संसार की अन्तिम सत्ता सर्वव्यापी सच्चिदानन्द-चेतना के हाथ में है और वह स्वयं उसका यन्त्र है, व्यापक कर्तृत्व-शक्ति का एक व्यक्त केन्द्र है, तो वह अधिकाधिक चेतन रूप से इस यन्त्रभाव को, समष्टि और व्यक्ति के यथार्थ संबंधभाव को बनाता चला जायगा और सब कामों में शुद्ध समर्पणभाव से प्रवृत्त होने का यत्न करेगा। इससे उसके चित्त की सारी स्थिति ही दूसरी हो जायगी। इसमें उसे परिणाम का मोह नहीं होगा—जो अन्त में कर्त्ता है यह विषय उसका जो ठहरा। फिर कर्म के करने में भी घोर सोच-विचार और रजोगुणी उतार-चढ़ाव की जगह सहज सम-भाव स्थित होने लगेगा। परन्तु कर्म के सम्बन्ध में उपेक्षा, उदासीनता या जड़ता की वृत्ति नहीं होनी चाहिये। इसके विपरीत सदा सतर्क भाव में मनुष्य कर्म की प्रेरणा को अनुभव करने का यत्न करे और प्रेरणा मिलने पर अपने अस्तित्व के यथार्थ भाव में उसका पालन करे।

जेरुसलम के उक्त यहूदी प्रोफेसर ने मेरी इस व्याख्या में से बहुत नोट लिये और इस दृष्टिकोण को समझने की भरसक कोशिश की। परन्तु निश्चय ही मैं यह आशा नहीं कर रहा था कि वे इतनी जल्दी कर्म के इस मर्म को अवगत कर लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार हर बार ही जब कि हम मिलते, कोई न कोई गम्भीर प्रश्न उपस्थित होता। एक दिन श्रीअरविन्द के पूर्णयोग का स्वरूप ही विचारणीय विषय था। योग क्या है, तथा अभीप्सा, वर्जन और आत्मोद्घाटन की क्रियाओं का रूप क्या है? गुरु और साधक का सम्बन्ध, गुरु की आवश्यकता आदि आदि प्रश्न एक एक करके विचार में आये।

एक दिन उन्होंने अपने जीवन-विकास का वृत्तांत सुनाया। वे योरुप में पहले एक साधनशैली का अनुसरण कर चुके थे। परन्तु उसमें उनकी यथार्थ निष्ठा न जमी थी। श्रीअरविन्द की पुस्तकों से परिचय उन्हें जेरुसलम में ही प्राप्त हुआ था। उन्होंने बताया कि उनकी रुचि को जानते हुए उनके एक मित्र ने उनके गत जन्मदिवस पर उन्हें श्रीअरविन्द की "Essays on the Gita" भेंट की। "The Life Divine", उन्होंने कहा, उनके पास वहीं थी। इसे वे चलते समय साथ बांध लाये थे ताकि जहां कहीं समय मिलेगा पढ़ा करेंगे।

निश्चय ही यह अनुभव अप्रत्याशित था। प्रोफेसर महोदय ने अधिक आश्चर्यजनक एक और बात बतायी। वह यह कि जेरुसलम में एक सज्जन हैं जिन्होंने श्रीअरविन्द-दर्शन का खूब ही अध्ययन किया है। उन्होंने वहां श्रीअरविन्द-दर्शन पर व्याख्यानमाला दी है और उसके लिये रुचि रखनेवाले श्रोताओं का एक मंडल सा बन गया है।

पर भारत में अभीतक किसी विश्वविद्यालय में नियमपूर्वक श्रीअरविन्द-दर्शन पर व्याख्यान नहीं हुए, यद्यपि भारतीय विद्यार्थी के लिये यह दार्शनिक शिक्षण का अद्वितीय साधन है। हम पश्चिमीय पुस्तकों का उपयोग करते हैं। परन्तु उनके विचार हमारे परम्परागत सांस्कृतिक विचारों से भाव और शैली में बहुत भिन्न होते हैं। उन विचारों की पैवंद हमपर सहज नहीं बैठती। उसीमें ही हमारी मौलिकता नष्ट हो जाती है। The Life Divine पूरे अर्थों में अर्वाचीन है और तिसपर सर्वथा भारतीय पृष्ठभूमिका पर स्थित है।

पर अब वह समय आ गया है जब कि हमारी मानसिक दासता समाप्त हो जायगी।

एशियाई सम्मेलन के दो-एक प्रधान संपर्क नमूने के तौर पर हमने ऊपर वर्णित किये हैं। इनके अतिरिक्त दो व्यक्ति लंका के काफी विशेष रुचिवाले थे। दो अफ्रीका से आये हुए भारतीय आश्रम से पहले से ही परिचित थे। एक लंका का बौद्ध भिक्षु बड़ी पूछताछ करता रहा था। अफगानिस्तान के एक-दो व्यक्ति भारतीय संस्कृति में कुछ विशेष रुचि रखते थे। नेपाल के प्रतिनिधि तो प्रायः करके श्रीअरविन्द के साहित्य से परिचित थे और उनके प्रति श्रद्धा की भावना प्रदर्शित करते थे। एक मलाया के प्रतिनिधि पीछे दर्शन के लिये आश्रम में भी आये। एक इंगलैंड के दर्शक कुछ श्रीअरविन्द-साहित्य खरीदकर ले गये तथा श्रीअरविन्द के विचारों को समझने का यत्न करते रहे।

इन व्यक्तियों को छोड़कर जिन्होंने थोड़े अथवा बहुत अंश में कुछ विशेष रूप से श्रीअरविन्द के कार्य और उद्देश्य को समझने का यत्न किया था, हमने सम्मेलन पर अपने कार्य का एक सामान्य प्रभाव भी अनुभव किया। श्रीअरविन्द-साहित्य की दुकान और प्रदर्शिनी तथा दो-एक आश्रम के अथवा आश्रम की ओर से व्यक्तियों की उपस्थिति प्रत्यक्ष ही एक सामान्य संस्कार दे रही थी। वह यह कि मानो श्रीअरविन्द के आदर्श और उद्देश्य संसार में प्रकट रूप से एक प्रगति का स्वरूप रखते हैं। वे संसार को अपनी दिशा देना चाहते हैं। यह सामान्य संस्कार अपने आपमें एक प्रेरक बल रखता है, जो धीरे धीरे प्रत्यक्ष परिणाम भी दिखाने के योग्य बन जाता है।

इन विदेशी संपर्कों के अलावा अनेक भारतीय व्यक्तियों से भी संपर्क पैदा हुए। इन संपर्कों ने कहीं पुरानी भ्रांतियों को दूर किया और कहीं नयी श्रद्धा और भक्ति को प्रेरित किया। यह स्वा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाविक ही है। इन भारतीय संपर्कों में कुछ एक बड़े उपयोगी थे, परन्तु हम उनका यहां विशेष उल्लेख नहीं करना चाहते।

एशियाई सम्मेलन पर श्रीअरविन्द-कार्य ने किसी अंश में अखिल एशिया के विस्तार को ग्रहण किया। श्रीअरविन्द पूर्वी संस्कृति के जैसे अपूर्व मूर्त्तिमान् स्वरूप हैं यह उपयुक्त और आवश्यक ही है कि उनके विचार सारे एशिया में अपने पूरे विस्तार को प्राप्त करें; पूर्व, वास्तव में, अपने सांस्कृतिक धर्म को पहचाने, और उसे सचेत होकर विकसित करे। ऐसा होने पर ही मानवजाति का अन्तिम ध्येय साधित होगा। पूर्व की आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और पश्चिम के विशाल प्राकृतिक विज्ञान का सुन्दर समन्वय बनेगा। श्रीअरविन्द ने स्पष्ट कहा ही है "प्राच्य और पाश्चात्य का एकीकरण इस युग का धर्म है। परन्तु इस एकीकरण में यदि हम पाश्चात्य को आधार या मुख्य अंग बनावेंगे तो हम भयानक भूल करेंगे। प्राच्य ही आधार है, प्राच्य ही मुख्य अंग है.....पाश्चात्य लोग प्रजातन्त्र के बाहरी आकार और उपकरण में ही फंस गये हैं। .....वे आकार और उपकरण में इस प्रकार आसक्त हो गये हैं कि वे इस बात को देख ही नहीं पाते कि उस बाहरी आकार के अन्दर श्रद्धा मर रही है।" पूर्व ने भाव और श्रद्धा की रक्षा की है, पश्चिम ने बाह्य उपकरण बढ़ाया है। बाह्य उपकरणों का आन्तरिक भाव और श्रद्धा की सजीव स्वाभाविक प्रेरणा से उपकरण के रूप में ही उपयोग करना हमें सीखना है। यही इस युग का धर्म है।

श्रीयुत अम्बालालजी पुराणी देहली में

गत अप्रैल दर्शन के अवसर पर जब श्रीयुत अम्बालालजी पुराणी ने मुझे बतलाया कि वे दर्शन के पश्चात् २५ अप्रैल को बाहर गुजरात जानेवाले हैं तो मैंने उनसे निवेदन किया कि वे देहली भी पधारें तो बड़ी कृपा हो। उन्होंने आशा दिलायी कि वे गुजरात का कार्य समाप्त करके संभवतः उधर आ सकेंगे।

पर जब मई के अन्त तक और फिर जून के प्रथम सप्ताह तक भी श्री पुराणीजी का कोई समाचार देहली में मुझे नहीं मिला तो मैं समझने लगा कि अब वे शायद नहीं आ सकेंगे। श्री पुराणीजी, श्रीअरविन्दाश्रम के एक प्रमुख साधक, जो २३ वर्ष तक लगातार पांडिचेरी आश्रम में साधना करते रहे थे और इतने वर्षों बाद पहली बार पांडिचेरी से बाहर जा रहे थे, उनका देहली में आना हमारे लिये एक बहुत बड़ी बात थी। अचानक १० जून को उनका तार मिला और ११ जून के सायंकाल वे देहली पहुंच गये। उनके आने की यह तिथि पहले से निश्चित न होने से हम कुछ पूर्व-तैयारी नहीं कर सके थे। तब भी हमने उनकी उपस्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न किया और १२ जून से १६ जून तक प्रतिदिन कुछ न कुछ आयोजन किया जिसका कि संक्षिप्त विवरण निम्न-लिखित है :—

१२ जून :—गुरुवार को रात्रि के ८ बजे श्रीअरविन्द निकेतन के कनाट सर्कस में स्थित कार्यालय में कुछ अपने सुपरिचित व्यक्तियों को निजी तौर से सुरेन्द्रनाथजी ने और मैंने आमन्त्रित किया। २३ व्यक्ति उपस्थित हुए। पुराणीजी ने सब अपने ही आदमी देखकर इस अवसर पर खूब दिल खोलकर बातें कीं। एस. एन. सण्डरसन कम्पनी के श्रीयुत ब्रह्मानन्दजी ने कई उत्तम और सूक्ष्म विचारों को प्रेरित करनेवाले प्रश्न पूछे। पुराणीजी अपने पूरे भाव में उत्तर दे रहे थे। बातचीत के ये ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घंटे बहुत ही थोड़ी देर में बीत गये ऐसा मालूम हुआ। अन्त में जब वे अनन्त, असीम (Infinite) का दो रूपों में वर्णन कर रहे थे और श्रीअरविन्द की एक कविता सुनाकर उसका अर्थ समझा रहे थे तब वे हम सब श्रोताओं को आनन्द के साथ सूक्ष्म विचार की एक ऐसी गहराई में ले जा रहे थे कि उस दृश्य को मैं आसानी से नहीं भूल सकूंगा।

१३ जून :—शुक्रवार के सायं ८ बजे सुरेन्द्रनाथजी ने अपने सेण्ट्रल लेन, बाबर रोड के मकान पर नयी दिल्ली के उस मुहल्ले भर के मित्रों को अपना एक लिखा हुआ निजी निमन्त्रणपत्र भेजकर आमन्त्रित किया था। १०० से ऊपर पुरुष और स्त्री समय पर एकत्रित हो गये। श्रीयुत पुराणीजी का थोड़ा-सा परिचय कराया गया जिसके बाद उन्होंने श्रीअरविन्द के विषय में कुछ भाषण किया और उसके बाद श्रोताओं को प्रश्न पूछने के लिये भी कहा गया। प्रश्नकर्त्ताओं के प्रश्नों से ऐसा मालूम होता था कि इस सभा में बहुत से सुपठित लोग एकत्रित हुए थे। कइयों ने श्रद्धाभाव से कुछ प्रश्न पूछे, कइयों ने श्रद्धाभाव होते हुए भी कुछ बेढंगे-से प्रश्न किये किन्तु श्री पुराणीजी ने उनके भी उत्तर पूरी शांति के साथ दिये।

१४ जून :—शनिवार को दोपहर ४ बजे एस. एन. सण्डरसन कम्पनी के पहाड़गंज के मुख्य दफ्तर में कम्पनी के सब कार्यकर्त्ता पुराणीजी के सत्कार में एकत्रित हुए। सम्मिलित जलपान हुआ और पुराणीजी ने कुछ थोड़े से शब्द कहे और कुछ प्रश्नों के उत्तर दिये। लगभग ५० कार्यकर्त्ता उपस्थित थे।

उसी दिन सायंकाल साढ़े छः बजे दरियागंज में श्री डा. अग्रवालजी के मकान पर श्रीअरविन्द-योग-मन्दिर में पुराणीजी पधारे जिसके लिये श्री डा. अग्रवालजी का विशेष निमन्त्रण था। इस आयोजन की सूचना देहली के समाचारपत्रों में भी दे दी गयी थी। इस श्रीअरविन्द-योगमन्दिर में एक छोटी-सी सुन्दर चौकी पर बैठकर पुराणीजी ने अंग्रेजी में श्रीअरविन्द के दर्शन और उनके योगमार्ग पर एक छोटा-सा बहुत उत्तम भाषण दिया। उसके बाद सब उपस्थित व्यक्तियों के साथ मिलकर २० मिनट तक ध्यान किया। ध्यान के बाद २-३ व्यक्तियों ने पुराणीजी से कुछ प्रश्न पूछने चाहे और पुराणीजी की अनुमति होने से वे पुछे गये। इनका उन्होंने सुन्दरता के साथ उत्तर दिया। लगभग ४० व्यक्ति उपस्थित थे।

१५ जून :—रविवार को सायंकाल ७ बजे श्रीअरविन्द निकेतन के कनाट सर्कस नयी दिल्ली के कार्यालय में एक सभा का आयोजन किया गया जिसके लिये लगभग २०० व्यक्तियों को निमन्त्रण भेजे गये और देहली के एक अंग्रेजी और एक हिन्दी के दैनिक पत्र में इसकी सूचना भी दी गयी। इस सभा में श्री पुराणीजी ने 'श्रीअरविन्द के जीवन के कुछ पहलू और उनका कार्य' इस विषय पर डेढ़ घंटे तक हिन्दी में एक ओजस्वी भाषण दिया। वे अपने प्रवाह में और भी आगे बोलते जाते, पर समय पूछने पर पता लगा कि डेढ़ घंटा हो गया था इसलिये उन्होंने एकदम अपना भाषण वहींपर खत्म कर दिया। इसके अनन्तर श्रोताओं ने कुछ प्रश्न भी पूछे। इस सभा में प्रश्नकर्त्ताओं ने अच्छे-अच्छे और जिज्ञासुभाव से ही प्रश्न पूछे, ऐसा स्पष्ट मालूम हो रहा था। सभा में लगभग डेढ़ सौ श्रोताओं की उपस्थिति थी।

१६ जून :—सोमवार को प्रातःकाल सात बजे श्रीअरविन्द निकेतन के निवासस्थान में, जो कि महरौली (कुतुब) के पास है, पुराणीजी के साथ ध्यान का आयोजन किया गया। श्रीअरविन्द से संबंध रखनेवाले देहली के आसपास के कुछ व्यक्तियों ने पुराणीजी के देहली आने की संभावना सुनकर यह इच्छा प्रकट की थी कि उनके आगमन की सूचना उन्हें भी दी जाय। इसलिये लगभग २५ व्यक्तियों को १२ तारीख को डाक द्वारा मैंने एक ऐसी सूचना भेजी थी कि १५, १६ जून को पुराणीजी के साथ सत्संग का अवसर होगा। जिनको सूचना दी गयी थी वे प्रायः सभी व्यक्ति १५ तारीख को श्रीअरविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकेतन में आ गये। ये लोग मुजफ्फरनगर, मेरठ, मथुरा, गाजियाबाद, करनाल आदि से आये थे। इन सबके ठहरने का प्रबंध श्रीअरविन्द निकेतन के निवासस्थान में ही किया गया था। ये लोग १५ ता० के सायंकाल पुराणीजी के व्याख्यान में सम्मिलित होने कनाट सर्कस में भी उपस्थित हुए थे। और फिर रात को श्रीअरविन्द निकेतन वापिस आ गये थे। ये सब लोग, लगभग २० व्यक्ति, १६ ता० के इस प्रातःकाल के ध्यान में सम्मिलित हुए। उसके बाद लगभग साढ़े दस बजे तक ये सब व्यक्ति पुराणीजी से बातचीत, ज्ञानचर्चा, शंकासमाधान आदि करते रहे। कुछ व्यक्ति बाद में भी आये।

यदि संभव हुआ तो श्री पुराणीजी के देहली के इन भाषणों का सारांश भी आगामी अंक में देने का हम विचार रखते हैं।

अगले दिन १७ ता० को प्रातःकाल पुराणीजी देहली से फिर बम्बई चले गये।

—अभय

लेखक-परिचय

श्री एन० एन० कौल—आप एक बहुत असामान्य युवक हैं। बड़े स्वाध्यायशील तथा सहज लेखक हैं। पढ़ते, मनन करते, सब प्रकार के आदर्शवादी व्यक्तियों से मिलते-मिलाते आप आध्यात्मिक दृष्टि-कोण और विचारधारा की ओर झुके। अब अधिकांश में इसी विचारधारा को जीवन में चरितार्थ करना ही वास्तविक आदर्श मानते हैं। इसीमें ही व्यक्ति तथा समाज का सच्चा कल्याण देखते हैं तथा वर्तमान बौद्धिक संस्कृति के अवास्तविक संघर्षों का यथार्थ समाधान अनुभव करते हैं।

श्री वंशीधरजी विद्यालंकार—आप हैदराबाद में उस्मानिया विश्वविद्यालय के संस्कृत और हिन्दी के उपाध्याय हैं। साहित्य के क्षेत्र में बहुत सम्मानित हैं। हिन्दी के सुविख्यात कवि हैं। साहित्यिक रस का आपने अपने जीवन में खूब ही आस्वादन किया है। अब उन्हें उससे बढ़कर किसी और रस की खोज है। उसका आभास भी उन्हें प्राप्त है। इसी जिज्ञासा तथा आभास का उन्होंने अपनी छोटी सी कविता में प्रेरणात्मक संकेत दिया है।

श्री धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति—आप आर्य सार्वदेशिक सभा देहली के सम्मानित मन्त्री हैं। बड़े विद्वान्, विचारशील तथा अनथक कार्यकर्त्ता। आध्यात्मिक जिज्ञासा में बड़ा स्वतन्त्र भाव रखते हैं। इस अंक में हम श्रीअरविन्द की प्रसिद्ध कविता "Transformation" का उनका किया हुआ काव्यानुवाद दे रहे हैं। अनुवाद सुन्दर, सरल और बलपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदिति

कुछ सम्मतियां

हमारे त्रैमासिकों में काशी की 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका', शान्ति-निकेतन (बंगाल) की 'विश्व-भारती पत्रिका', श्रीअरविन्द-आश्रम (पांडिचेरी) की 'अदिति' और हिन्दुस्तानी एकेडमी (प्रयाग) की 'हिन्दुस्तानी' ही प्रथम कोटि में आने योग्य हैं। इनके द्वारा जो स्थायी साहित्य की सृष्टि हो रही है उससे साहित्य-भंडार दिन-दिन समृद्ध होता जा रहा है। इनके गवेषणात्मक एवं समीक्षा-त्मक लेखों से साहित्यसम्बन्धी अनेक गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन और बहुत-सी भ्रांत धारणाओं का सम्मार्जन होता रहता है। साहित्य का राजपथ इनके शोधसम्बन्धी अविरल लेखों से परिष्कृत और आलोकित होकर, संवलहीन पाठकों को भी दुर्गम ज्ञान-गढ़ तक पहुंचाने के लिये, सहज गन्तव्य एवं प्रशस्त हो जाता है। इनमें केवल 'अदिति' ही ऐसी है जिसकी साहित्यिकता आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है।

—श्री शिवपूजनसहाय, 'हिमालय'

* *

'अदिति' तपस्वी श्रीअरविन्द की विशाल आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि से प्रेरित एक त्रैमासिक पत्रिका है, जो विगत तीन वर्षों से निकल रही है। उसीका नवम्बर, ४५ में निकला हुआ अंक हमारे सामने है। इस अंक के योग्य सम्पादक ने लेखों का चयन बड़ी योग्यतापूर्वक किया है। वैदिक सूक्त-सुधा, जो क्रमशः प्रकाशित हो रही है, विशेष रूप से मनन करने योग्य है। मन्त्रों का भाष्य इस ढंग से किया गया है कि हिन्दी और साधारण अंग्रेजी जाननेवाले वेदमन्त्रों का आस्वादन समान रूप से कर सकते हैं। श्रीअरविन्द-वाणी में आत्म-निर्णय (Self-determination) का गम्भीर और व्यापक सिद्धांत "हमारे आत्म-तत्त्व और दूसरों के आत्म-तत्त्व के बीच तथा हमारे जीवन और दूसरोंके जीवनों के बीच एक प्रच्छन्न एकता है"—सर्वमान्य एवं ऊंची आध्यात्मिकता का द्योतक है। हम सहयोगी की हृदय से उन्नति चाहते हैं।

—श्री रामनारायण 'विशारद', 'शिक्षा-सुधा'

* *

'अदिति' पत्रिका निस्सन्देह अतीव सुन्दर और पवित्र तथा मानसिक शान्ति देनेवाली है।

—श्री शिवपूजनसहाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७५५६८

हिन्दी में श्रीअरविन्द-साहित्य

चार साधन	॥)	इस जगत् की पहेली	१।)
योग-विचार	(प्रेस में)	जगन्नाथ का रथ	।॥)
विचार और झांकियां	।॥)	श्रीअरविन्द के पत्र	॥)
दयानन्द	।॥)	धर्म और जातीयता	१॥)
नये वर्ष की प्रार्थनायें	।)	गीता की भूमिका	१।॥)
दुर्गास्तोत्र	।)	श्रीअरविन्द का आश्रम और उनकी शिक्षा	।)
अदिति माता	१)	मातृवाणी	२।)
गीताप्रबन्ध	४॥)	सर्वोत्तम आविष्कार	।=)
माता	।॥)	वार्षिक प्रार्थनायें	=)
योगप्रदीप	।॥)	श्रीअरविन्द और उनका योग	॥=)
योग के आधार	२।)	पूर्णयोग	१॥)
उत्तरपाड़ा अभिभाषण	।=)		
हमारा योग और उसके उद्देश्य	।॥)		

श्रीअरविन्द निकेतन, कनाट सरकस, नयी देहली

अदिति में विज्ञापन

दर	एक अङ्क में	वर्ष के चार अङ्कों में
पूरा पृष्ठ	२५)	९०)
आधा ,,	१४)	५०)
चौथाई ,,	८)	२७)

विज्ञापन स्वीकार करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri